भारत की पहली शिक्षिका

माता सावित्रीबाई फुले

डा. सुभाष चंद्र
प्रोफेसर, हिंदी-विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

सत्यशोधक फाउंडेशन, कुरुक्षेत्र

माता सावित्रीबाई फुले के जन्म दिवस पर
3 जनवरी 2020

मूल्य : 60 रुपए

प्रथम संस्करण

सत्यशोधक फाउंडेशन
912, सेक्टर - 13, कुरुक्षेत्र
9416482156

आवरण डिजाइन : असीम
संपर्क 7726973890

Mata Savitri Bai Phule
By Dr. Subhash Chander

अनुक्रम

दो शब्द	5
पृष्ठभूमि	7
बचपन	10
दो महान शख्सियतों का मिलन	14
शिक्षा	19
पहली शिक्षिका	21
फातिमा शेख	27
सगुणा बाई	28
दृढ निश्चयी व आशावादी	32
समानता और न्याय	36
बाल हत्या प्रतिबंधक	38
ममता की मूर्ति	41
अकाल राहत	44
प्रकृति प्रेमी	47
सत्यशोधक	50

पति को मुखाग्नि 52
शहादत 54
इतिहासवेत्ता 56
साहित्यकार 59

कविताएं

मेरा गांव, मेरी जन्मभूमि 12
जोतिबा का उपदेश 15
जोतिबा को सलाम 16
अज्ञान 24
हमारी आऊ 29

पत्र

पहला पत्र 32
दूसरा पत्र 36
तीसरा पत्र 45

दो शब्द

फुले दम्पति (सावित्रीबाई फुले और जोतिबा फुले) का आगमन भारतीय इतिहास को मोड़ देने वाली घटना है। सामाजिक क्रांति के जनक जोतिबा फुले और भारत की पहली शिक्षिका सावित्रीबाई फुले ने समाज में सत्य, न्याय, समानता, स्वतंत्रता और मानव भाईचारे की स्थापना के लिए अनेक क्रांतिकारी कदम उठाए। क्रांतिकारी कार्यों के लिए रूढ़िवादी समाज की प्रताड़नाओं को सहन किया, लेकिन पूरी जिंदगी दृढ़ संकल्प के साथ कार्य करते रहे।

उन्नीसवीं शताब्दी में अनेक समाज सुधारकों ने समाज सुधार के अनेक आंदोलनों की शुरुआत की। राजा राम मोहन राय, केश्वचंद्र सेन, देवेंद्रनाथ ठाकुर, स्वामी दयानंद सरस्वती जैसे महान सुधारकों ने भारतीय समाज की अनेक कुरीतियों पर कुठाराघात किया। इन समाज सुधारकों का संबंध मध्यवर्ग और उच्चवर्ण से था, इसलिए इनका प्रभाव भी इन्हीं वर्गों तक था। इन आंदोलनों का कार्यक्षेत्र स्त्री शिक्षा, बाल विवाह, विधवा पुनर्विवाह, अनमेल विवाह तक सीमित था।

फुले-दम्पति का संबंध समाज के निम्न-वर्ग से था और इनका प्रभाव समाज के निचले वर्गों शूद्रों-अतिशूद्रों और किसानों तक फैला था। जाति-व्यवस्था का खात्मा, छुआछूत का खात्मा, धार्मिक-पाखण्डों व अंधविश्वासों का निराकरण, भेदभावपूर्ण जातिगत व लैंगिक मूल्यों की सामाजिक जीवन से समाप्ति, धार्मिक आवरण में गरीबों का शोषण, सामाजिक विषमता, अज्ञानता, ब्राह्मणवादी सांस्कृतिक वर्चस्व के स्थान पर समाज में लैंगिक समानता, सामाजिक समानता, धार्मिक सहिष्णुता, वैज्ञानिक व तार्किकता की स्थापना इनके आंदोलनों के उद्देश्य था।

समाज में ब्राह्मणवादी (वर्ण-व्यवस्था और पितृसत्ता) विचारधारा के वर्चस्व से शूद्रों-अतिशूद्रों को ज्ञान, सत्ता और संपति से वंचित हुए जिससे उनके विकास के रास्ते बंद हो गए थे। सावित्रीबाई-जोतिबा फुले ने भेदभावकारी विचारधारा के विरूद्ध बगावत करने के लिए आंदोलन चलाया और लोगों को जागृत किया।

सत्य और न्याय के लिए संघर्षरत लोगों के लिए सावित्रीबाई फुले और जोतिबा फुले का जीवन प्रेरणादायी है। इनके जीवन संघर्षों और चिंतन का भारतीय समाज पर विशेषकर दलितों-वंचितों-शोषितों के आंदोलनों और जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। फुले-दम्पति के संघर्ष मुक्तिदाता बाबा साहेब डा. भीमराव आंबेडकर की संघर्षों व चेतना की प्रेरणा बने।

ज्यों-ज्यों भारतीय समाज के शोषित वर्गों में सामाजिक-राजनीतिक जागरूकता बढ़ रही है अपने इतिहास और महापुरुषों के जीवन के बारे में जानने की इच्छा भी प्रबल हो रही है। इसी का परिणाम है कि काफी समय तक उपेक्षित रहे नायकों के जीवन, कार्यों और उनके योगदान पर साहित्य प्रकाशित होने लगा है।

सावित्रीबाई फुले और जोतिबा फुले के जीवन-संघर्ष और सामाजिक बदलाव के कार्य अविभाज्य है। उद्देश्य, कार्य, सोच में एकता तथा एक-दूसरे के प्रति समर्पित होते हुए भी दोनों का व्यक्तित्व विशिष्ट है। यहां हम सावित्रीबाई फुले का जीवन प्रकाशित कर रहे हैं। यहां इनके काम और उसके प्रभाव का मूल्यांकन नहीं, बल्कि इनके जीवन और कार्यों का परिचय दिया गया है।

आशा है ये प्रयास सार्थक होगा

डा. सुभाष चंद्र
प्रोफेसर, हिंदी-विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

पृष्ठभूमि और परिवेश

महात्मा जोतिराव फुले और उनकी पत्नी सावित्रीबाई फुले को आधुनिक भारतीय सामाजिक क्रांति का जनक कहा जा सकता है। फुले दम्पति ने पूरी जिन्दगी भारतीय समाज में मौजूद धर्मभेद, वर्णभेद, जातिभेद, लिंगभेद के खिलाफ कार्य किया। वे जैविक बुद्धिजीवी थे। जिन्होंने अपने अनुभवों से ही अपने जीवन-दर्शन का निर्माण किया। फुले-दम्पति का समाज में कार्य का काल उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। महाराष्ट्र में पूना शहर और उसके आस पास का इलाका उनका कार्यक्षेत्र रहा।

अंग्रेजी शासन की स्थापना (सन् 1818) से पहले महाराष्ट्र में पेशवा शासन था, इस शासन में जाति के आधार पर घोर भेदभाव होता था। ऊंची कही जाने वाली जातियां विशेषकर ब्राह्मण इस शासन में विशेष लाभ प्राप्त करती थी। सामाजिक तौर निम्न कही जाने वाली जातियों को सड़क जैसी

सार्वजनिक जगहों पर भी बराबरी से चलने का अधिकार नहीं था। ज्ञान, सत्ता और संपति से वंचित शूद्रों-अतिशूद्रों की स्थिति गुलामों से बेहतर नहीं थी।

यद्यपि अंग्रेजी शासन जाति के आधार पर कानूनी तौर पर भेदभाव नहीं करता था, लेकिन जाति-व्यवस्था को तोड़ने के कोई प्रयास नहीं करता था। अंग्रेजी शासन में विभिन्न विभागों में उच्च जातियों विशेषकर ब्राह्मणों का आधिपत्य था। शिक्षालय हो या न्यायालय सभी जगहों में जाति विशेष (ब्राह्मण) से ताल्लुक रखने वाले कर्मचारियों का बाहुल्य था। जाति नियंत्रित समाज में शासन भी जातिगत पूर्वाग्रहों से ग्रस्त था।

अंग्रेजों ने अपने शासन के विस्तार व उस पर मजबूत पकड़ बनाने के लिए अनेक उपक्रम किए। इसी प्रक्रिया में संचार के साधनों और उद्योगों के विकास हुआ। इसके फलस्वरूप रूढ़िवादी सोच पर करारी चोट पड़ने लगी। लोगों में समान व्यवहार और स्वतंत्रता प्राप्ति की चाह बढ़ रही थी और ब्राह्मणवादी सोच की जकड़ ढीली पड़ रही थी।

समाज में आजादी के ख्याल जोर मार रहे थे। जिसका परिणाम था सन् 1857 का स्वतंत्रता संग्राम। भारतीय समाज के निचले पायदान पर रहने वाले शूद्रों और अतिशूद्रों को भी अपनी गुलामी जैसी स्थिति का संज्ञान हो रहा था। उनको अहसास हो गया था कि वर्ण-व्यवस्था के माध्यम से समाज के उच्च वर्गों ने ज्ञान, सत्ता और संपति से वंचित करके उनके विकास के रास्ते बंद किए हैं। इनको प्राप्त करके ही वे मानवीय गरिमा को प्राप्त कर सकते हैं।

फुले-दम्पति ने शूद्र-अतिशूद्र में मानव अधिकारों की चेतना पैदा करने के लिए अपना जीवन समर्पित किया। फुले-दम्पति ने अपने समाज की वास्तविकता को साहित्य में स्थान दिया। वास्तविकता के कारणों की तलाश की और इनको दूर करने के लिए समाज को जागृत किया।

जोतिराव फुले (11अप्रैल, 1827 - 28 नवम्बर, 1890) ने शिक्षा व ज्ञान प्राप्त किया और फिर अपनी पत्नी सावित्रीबाई फुले को शिक्षित किया। शिक्षा प्राप्त करके सावित्रीबाई दलित-वंचित समाज और विशेषकर महिलाओं को शिक्षित करने के काम में जुटी। महात्मा जोतिराव फुले और सावित्रीबाई

फुले के जीवन की गहन अध्येता फुलवंताबाई झोड़गे ने सावित्रीबाई फुले के योगदान को रेखांकित करते हुए लिखा है

'अपने देश की महिलाओं में, सावित्रीबाई पहली शिक्षित स्त्री, पहली अध्यापिका, भारत की सभी जातियों में स्त्रियों की पहली नेता और छूआछूत की प्रथा का प्रखर विरोध करने वाली पहली कार्यकर्ता स्त्री हैं। महात्मा जोतीराव फुले के कार्य पर उनका अटूट विश्वास था। उनकी स्पष्टवादिता शूद्र-अतिशूद्र समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने की उनकी दूरदृष्टि, सद्वर्तन, विद्या-प्रेम, विलक्षण जिद्द तथा उसके साथ दृढ़ निष्ठा आादि गुणों के कारण उनकी महानता द्विगुणित होती है। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन पददलित वर्ग, किसान, गरीब तथा मज़दूरों के उत्थान के लिए समर्पित किया था। नये आचार-विचारों की एक महान् परम्परा उन्होंने अपने कार्य से शुरू की।'[1]

शूद्रों-अतिशूद्रों और स्त्रियों पर अन्याय को कायम रखने के लिए मनुस्मृति जैसे ग्रंथों की रचना की गई। महात्मा जोतिबा फुले ने इस बारे में जो भविष्यवाणी की थी, डा. भीमराव आंबेडकर ने मनुस्मृति-दहन करके साकार कर दिया।

"शूद्र लोग उनके एवं उनके वंशजों के नीच गुलाम बनकर रहें इस हेतु शूद्रों को अनौरस एवं जारज संतान ठहराकर तथा उनमें भी स्त्री जाति को नीच बतलाकर उच्च-नीचता की जातिवादी भावना पैदा की। भट्टों की यह कुटिलता समझने पर शूद्रातिशूद्र मनुसंहिता को मानव वंश शास्त्र न मानकर शैतान की सिफारिश करने वाला शास्त्र कहेंगे। आज के ज्ञान के ज्ञानी कहलाने वाले भट्टों ने यह नहीं निपटाया तो हम इस ग्रंथ को फाड़कर तार-तार करके टोकरी में फेंकेंगे या जला देंगे। यह केवल अंधेरे में नहीं बल्कि दिन-दहाड़े भट्टों की आंखों के

[1] संपादक हरि नरके, महात्मा फुले : साहित्य और विचार ; महात्मा फुले चरित्र साधने प्रकाशन समिति, महाराष्ट्र शासन; प्र. सं. 1993: पृ.- 249

सावित्रीबाई फुले का बचपन

सावित्रीबाई फुले का जन्म 3 जनवरी 1831 को महाराष्ट्र राज्य के सतारा जिले के नायगांव में हुआ। सावित्रीबाई फुले के पिता का नाम था - खंडो जी पाटिल और माता का नाम लक्ष्मी था। सावित्रीबाई के तीन भाई भी थे - सिदु जी, सखाराम और श्रीपति। सावित्रीबाई इनमें सबसे बड़ी थी।

नाय गांव में सावित्री बाई फुले का घर जहां उनका जन्म हुआ।

सावित्रीबाई बचपन से कर्मठ थी। वह मां के साथ घरेलू कार्यों में हाथ बटाती। सावित्रीबाई निडर व हिम्मती थी बचपन की एक घटना से इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। एक बार आम तोड़ने के लिए एक बच्चा पेड़ पर चढ़ गया। लेकिन पेड़ पर सांप था बच्चे की निगाह जब सांप पर पड़ी तो रोने लगा। वह इतना डर गया कि वह पेड़ से नीचे भी नहीं उतर पा रहा था। बच्चे की यह हालत देखकर सावित्रीबाई पेड़ पर चढ़ गई और सांप को दूर फेंक दिया और बच्चे को पेड़ से उतारा।

सावित्रीबाई के जीवनी लेखक एम.जी. माली ने अपनी पुस्तक 'क्रांतिज्योति सावित्रीबाई फुले' में सावित्रीबाई फुले के बचपन का एक रोचक प्रसंग का जिक्र किया है।

"बचपन में एक बार मां की अनुमति लेकर सावित्रीबाई बाजार गई। बाजार में उसने जलेबी और पकौड़ी खरीदी। वह जलेबी तथा पकौड़ी की पुड़िया हाथ में लेकर वापस लौट रही थी। रास्ते में उसकी भेंट एक ईसाई मिशनरी से हुई, जो अन्य साथियों के साथ ईश वंदना कर रहे थे। सावित्रीबाई वह सुनती रही, साथ ही साथ वह जलेबी और पकौड़ी भी खाती जा रही थी। मिशनरी ने सावित्री से कहा, 'बेटी, अच्छे लोग खाद्य पदार्थ रास्ते में नहीं, घर में बैठकर खाते हैं। तुम भी वैसा ही करोगी तो अच्छा होगा।' सावित्रीबाई को अपनी गलती का अहसास हुआ। उसने तुरंत वह पुड़िया फेंक दी। उस पर मिशनरी बहुत खुश हुआ और उन्होंने एक बिस्कुट का पैकेट और एक पुस्तक सावित्रीबाई को देकर कहा, 'यह पुस्तक अपने पास रखो। तुम पढ़ तो नहीं सकती, लेकिन चित्र देखकर भी तुम्हें संतोष मिलेगा।'

सावित्री घर लौटी तो यह बात गांव में फैल गई। ईसाई के हाथ का बिस्कुट लेने से सावित्री कलुषित हो गई। सावित्रीबाई ने उधर ध्यान नहीं दिया। उसने वह पुस्तक संभालकर रख ली। बाद में ज्योतिबा फुले से शादी होने पर ससुराल जाते समय सावित्रीबाई अन्य चीजों के साथ वह पुस्तक भी ले गई। सगुणाबाई और सावित्रीबाई को ज्योतिबा ने पढ़ाया, साक्षर बनाया। तब सावित्रीबाई ने वह पुस्तक अपने बक्से से निकालकर पूरी हकीकत ज्योतिबा के सामने कही। ज्योतिबा हंसे और उन्होंने उसे वह पुस्तक पढ़ने को कहा। वह प्रभु यीशु का आसान भाषा में सचित्र जीवन चरित्र था।"[2]

---

[2] एम. जी. माली; क्रांतिज्योति सावित्रीबाई फुले; प्रकाशन विभाग, भारत सरकार; पृ. 49

सावित्रीबाई ने अपनी जन्मभूमि नायगांव पर सुंदर कविता लिखी है। जिसमें गांव के भौतिक परिवेश के साथ-साथ उसके इतिहास की ओर भी संकेत किया है। गांव के गीतों-किस्सों, पशु-पक्षियों और वनस्पति, का आत्मीयता के साथ वर्णन किया है। अपने गांव से लगाव के साथ-साथ गांव की सत्ता संरचना की समझ व चीजों को समग्रता से देखने की दृष्टि का सहज ही बोध होता है।

मेरा गांव, मेरी जन्मभूमि

नायगांव
मेरा जन्मगांव
वहां मनोहर गीत और पवाडे

नायगांव, मेरी जन्मभूमि मेरा गांव
उसके ह्दयस्पर्शी गीत, और आख्यान
किस तरह सुनाऊं!

नायगांव में बंदर और लोमड़ियों का डेरा
रट्ठवंशी लोगों ने गांव बसाया
उसके बाद
छत्रपति शिवाजी महाराज ने
कुर्मी-मराठों के राज्य की स्थापना की
स्वराज बनाया लोकहित के लिए।

नायगांव कस्बा सुख-समृद्धि से भरपूर
बड़े ही अच्छे से संभाले हुए थे
उसकी व्यवस्था पाटील लोग
इसी कुल में मेरा जन्म हुआ।

मेरी जन्मभूमि
मुझे वंदनीय और दिल से प्यारी
मैं उसका गौरव-गीत गाती हूं।

नायगांव में बहुत मेहनती लोग
कितनी ही जनजातियों की बस्ती
खेत-खलिहानों में सुख छाया हुआ
फसल के लिए बरसती भरपूर बारिश

बागों में कुएं और लुभावने फल-फूल पौधे
पंछी गाते गीत मधुर
रंग-बिरंगी तितलियां मंडराती फूल-पौधों पर
साक्षात् प्रकृति
चहल-पहल करती हर पल।

महाराजा बलि महान
खेतिहर किसान दानी
मुझे जान पड़ता है मेरा गांव
बलिराजा की राजधानी
हम उस महादानी योद्धा के सच्चे वारिस हैं
हम नहीं रोनी सूरत वाले।

यह जन्मभूमि कहती है मुझसे
फूल खिलाओ
मैं आज्ञाकारी फूलों की बौछार करती हूं
मेरी जन्मभूमि पर।

(सं. अनिता भारती ; स्वराज प्रकाशन; दिल्ली (मराठी से अनु. शेखर पवार व फारूख शाह)

दो महान शख्सियतों का मिलन

सन् 1840 में सावित्रीबाई फुले का विवाह जोतिबा फुले से हुआ। इस समय सावित्रीबाई की उम्र 9 साल थी और जोतिबा की 13 साल। सावित्रीबाई और जोतिबा फुले का विवाह दो महान शख्सियतों का मिलन था। इस जोड़ी ने मिलकर आधुनिक भारत का नक्शा बनाया।

भारतीय आचार-संहिता, नैतिकता व संस्कारों में पत्नी को पति की अनुगामिनी के रूप में ही देखा गया। जोतिबा फुले व सावित्री के दाम्पत्य संबंधों ने पत्नी को बोझ व पुरुष पर आश्रित मानने वाली छवि को समाप्त कर दिया था। फुले-दम्पति की दृष्टि में बराबरी एक मूल्य के तौर पर था, इसी कारण सच्चे मायनों में अपनी जीवन साथी बनने में सफल हुए।

फुले दम्पति के घर छात्रावास में रहे महाडू वाघले नामक छात्र ने अपने संस्मरण में फुले दम्पति के बीच प्रगाढ़ प्रेम के बारे में लिखा है:

जोतिराव सावित्रीबाई का बहुत सम्मान करते थे और सावित्रीबाई उन्हें 'सेठजी' कहकर बुलाती थीं। उनके बीच सच्चा प्रेम था। जोतिबा फुले कभी ऐसा कोई कार्य नही करते थे जिसमे सावित्रीबाई की सहमति न होती।[3]

फुले दम्पति पति-पत्नी के साथ मानवता के काम में सहयोगी थे और एक-दूसरे के प्रति समर्पित थे। जोतिबा फुले ने सावित्रीबाई को शिक्षित किया। सार्वजनिक जीवन में अपनी भूमिका निभाने का अवसर दिया तो सावित्रीबाई फुले ने कष्ट उठाकर मेहनत और धैर्य से इस काम को आगे बढ़ाया। गोविंदराव फुले ने पूना के रूढ़िवादी लोगों के डर और बहकावे में आकर अपने बेटे जोतिबा फुले को घर से निकाल दिया तो सावित्रीबाई भी सहर्ष उनके साथ गई।

जोतिबा फुले सावित्रीबाई का बहुत सम्मान करते थे और अपनी सफलता का श्रेय सावित्रीबाई को देते थे। 'अपने जीवन में जो कुछ भी कर सका, इसके लिए मेरी पत्नी कारणीभूत है' ऐसा कहते थे। सन् 1852 में अंग्रेज सरकार ने शिक्षा के प्रसार लिए फुले-दम्पति को सम्मानित किया था। उस अवसर पर गर्व के साथ जोतिबा ने सावित्रीबाई के कार्य का उल्लेख करते हुए कहा था:

" यह गौरव तुम्हारा ही गौरव है। मैं स्कूल खोलने के लिए कारण मात्र बन गया। लेकिन मुझे इस बात पर गुमान है कि उन स्कूलों को सुचारू रूप से चलाने में तुम सफल रही हो।"[4]

सावित्रीबाई फुले भी जोतिबा को अपनी प्रेरणा मानती थी। जोतिबा फुले को केंद्रित करके कई कविताएं सावित्रीबाई ने लिखी हैं जिसमें अपनी भावना प्रकट की हैं।

---

[3] हरि नरके; धन्यज्योति सावित्रीबाई फुले; एन सी ई आर टी सावित्रीबाई स्मृति व्याख्यान

[4] एम.जी. माली; क्रांतिज्योति सावित्रीबाई फुले; प्रकाशन विभाग, भारत सरकार

जोतिबा का उपदेश

जोतिबा को नमन करती हूं
उनकी मधुर वाणी
करे मेरे मन में संचार।

करती हूं मैं सेवा टहल
अपने आराध्य को याद कर
सेवा सत्यधर्म है
जो देता है समाधान
और शांत रखता है हमारे मन को।

जोतिबा का संदेश
धरकर मन के भीतर
जीवन को दर्पण की भांति मैं देखती हूं
सेवाभाव से सेवा जो करते हैं
वे धन्य हैं, इन्सानों में।

ऐसा बोध प्राप्त होता है
ज्योतिबा के साथ में
मन के भीतर सहेजकर रखती हूं,
मैं सावित्री

जोतिबा को सलाम

जोतिबा को सलाम
हृदय से करते हैं
ज्ञान का अमृत हमें वे देते हैं

और जैसे हम
पुनर्जीवित हो जाते हैं।

महान जोतिबा,
दीन दलित शूद्र-अतिशूद्र
तुम्हें पुकारते हैं
ज्ञान की लालसा से
हमारा मन भर दीजिये

इसी ज्ञान से हमें मुक्ति मिलेगी
यह हम जानते हैं।

(सं. अनिता भारती ; स्वराज प्रकाशन; दिल्ली (मराठी से अनु. शेखर पवार व फारूख शाह)

भारतीय समाज में स्त्री की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार नहीं किया गया। बचपन में पिता का, जवानी में पति का तथा बुढ़ापे में बेटे के संरक्षण में रहने को आदर्श स्थिति माना गया। लैंगिक भेदभाव व उससे उत्पन्न समस्त समस्याओं की जड़ यही है। फुले दम्पति ने इस तरह की भेदभावकारी व स्त्री विरोधी मान्यताओं को मानने से इनकार किया। उनका दाम्पत्य-जीवन एक-दूसरे के प्रति आदर, विश्वास, सहयोग व समर्पण के साथ समतामूलक मूल्यों पर आधारित रहा।

सावित्रीबाई और जोतिबा फुले की सोच और स्वभाव एकमेक हो गए थे। उनका जीवन दाम्पत्य जीवन का आदर्श है। डी. के. खापर्डे ने सही टिप्पणी की है:

> " महात्मा फुले के शिक्षा के कार्य से सही मायने में सावित्रीबाई के जीवन कार्य का शुभारंभ हुआ। जोतीराव जिस प्रकार आदर्श पति थे, उसी प्रकार आदर्श गुरु भी थे। सावित्रीबाई जिस प्रकार जोतीराव

के जीवन की अर्धांगिनी थीं, उसी प्रकार उनके क्रांतिकारी आंदोलन की भी अर्धांगनी बन गई थीं। जोतीराव के समान उनके पास भी धैर्य, समर्पण की भावना तथा दूरदृष्टि थी। जोतीराव के समान उनमें भी अलौकिक गुण थे। इस कारण ही उन्होंने अपना संसार, बाल बच्चे, घर-द्वार इन सभी ऐहिक सुखों को त्यागकर अपने पति का, उनके सार्वजनिक जीवन में पूर्ण रूप से साथ दिया। जोतीराव फुले के साथ उन्होंने भी दु:ख मुसीबतें उठाईं। लोगों की निंदा सहन की। उनके अपशब्द सुने। संकटों का सामना किया। परन्तु सावित्रीबाई कभी डगमगाई नहीं। जोतीराव सावित्रीबाई की प्रेरणा थे, तो सावित्रीबाई जोतीराव की प्रेरणा थी। पति के कार्य में सहभागी होते हुए, उन्हें अत्यधिक प्रसन्नता होती थी। जोतीराव के कार्य के प्रति उनके मन में अत्यधिक सम्मान की भावना थी। एक बड़े आदमी की पत्नी के रूप में सिर्फ सभा-समारोह में भाग लेने का कार्य उन्होंने नहीं किया, बल्कि सही मायने में, जोतीराव के आंदोलन तथा विचारों के साथ सावित्रीबाई पूर्ण रूप से एकरूप हो गईं। समाज के पददलित वर्गों के उत्थान में दोनों की भी समान आस्था थी। दोनों भी दिन-रात केवल इस ध्येय को सफल करने के संबंध में ही चिंता करते थे। आपस में विचार-विमर्श करते थे। मित्रों-सहयोगियों के साथ चर्चा करते थे। किसी भी निर्णय पर अमल करने के लिए दोनों भी समान रूप से सदैव तत्पर रहते थे।"[5]

जोतिबा फुले व सावित्रीबाई फुले के अनुयायियों व प्रशसंकों को इससे सीख लेने की आवश्यकता है कि पति-पत्नी के संबंधों में बराबरी सामाजिक संबंधों में भी बराबरी की बुनियाद है।

---

[5] संपादक हरि नरके, महात्मा फुले : साहित्य और विचार ; महात्मा फुले चरित्र साधने प्रकाशन समिति, महाराष्ट्र शासन; प्र. सं. 1993: पृ.- 243

सावित्रीबाई फुले की शिक्षा

सावित्रीबाई फुले को उनके पति जोतिबा फुले ने शिक्षा दी। उस समय में यह एक असामान्य बात थी। भारतीय समाज में धार्मिक व्यवस्था के तहत स्त्री और शूद्र को शिक्षा से वंचित रखा गया। वर्ण-धर्म की रूढ़िवादी धारणा समाज में स्थापित हो गई थी कि यदि स्त्री और शूद्र वर्ग शिक्षा प्राप्त करेंगे तो उन्हें विशेषतौर पर और पूरे समाज को घोर विपत्ति का सामना करना पड़ेगा।

जोतिबा फुले अपने अनुभवों और चिंतन से इस नतीजे पर पहुंच गए थे कि दलित-वंचित मेहनतकश समाज की समस्याओं की जड़ है - अज्ञानता। जोतिबा फुले ने 'किसान का कोड़ा' नामक पुस्तक की शुरुआत की पंक्तियों में इस संबंध अपने विचार तार्किक ढंग से प्रस्तुत किए हैं।

विद्या बिना मति गई। मति बिना नीति गई।
नीति बिना गति गई। गति बिना वित्त गया।
वित्त बिना शूद्र गए।
इतने अनर्थ, एक अविद्या ने किए।

शिक्षा के बिना बुद्धि नहीं, बुद्धि के बिना नीति या योजना का अभाव रहा, योजना के बिना प्रगति नहीं हो सकी, प्रगति के बिना धन-संपति से वंचित रहे, धन-संपति के अभाव में शूद्र पिछड़ते चले गए, इतने अनर्थ अशिक्षा, अविद्या अथवा अज्ञान ने किए।

शिक्षा को जोतिबा फुले शूद्रों-अतिशूद्रों के विकास की कुंजी मानते थे। शिक्षा प्राप्त करके ही परंपरागत पेशों को त्यागकर नए पेशे अपनाने का रास्ता खुलता है। दलित-वंचित समाज के नारकीय जीवन के दुष्चक्र को तोड़ने के लिए अज्ञानता के खिलाफ जंग छेड़ दी। इस जंग में सहयोगी बनी सावित्रीबाई फुले। जोतिबा फुले ने अपने खेत की मिट्टी पर पेड़ की टहनी की कलम से सगुणाबाई और सावित्रीबाई को अक्षर ज्ञान करवाया।

इसके बाद मिसेज मिसेज मिचेल द्वारा पुणे में खोली गई संस्था नार्मल स्कूल में तथा अहमद नगर स्थित श्रीमती फरार के संस्थान में सावित्रीबाई ने शिक्षक प्रशिक्षण लिया।

जोतिबा और सावित्रीबाई फुले ने शताब्दियों से चले आ रही कथित 'मर्यादाओं' और 'परंपराओं' का अतिक्रमण करके जो कष्ट सहन किया उसी ने स्त्रियों और विशेषकर अछूतों के लिए शिक्षा के द्वार खोले।

"किसी नारी ने आज तक यदि किसी धर्म किताब की रचना की होती तो पुरुषों द्वारा सभी नारियों के अधिकारों के बारे में आपत्ति करके अपने पुरुष जाति के अधिकारों के बारे में वे बकवास न करते। क्योंकि नारियां यदि ग्रंथ लिखने योग्य होतीं तो पुरुषों ने इस तरह से उनका शोषण करके भेदभाव किया ही नहीं होता।" - महात्मा जोतिबा फुले

भारत की पहली महिला शिक्षिका

सन् 1848 में जोतिबा फुले व सावित्रीबाई फुले ने पुणे के बुधवार पेठ में लड़कियों के लिए स्कूल खोला। इसी स्कूल में सावित्रीबाई शिक्षिका हुई और पहली भारतीय महिला शिक्षक होने का गौरव प्राप्त हुआ। इस स्कूल में कुल 6 लड़कियों ने प्रवेश लिया था। इसके बाद सावित्रीबाई फुले और जोतिबा फुले ने पूना के क्षेत्र में 18 स्कूल खोले।

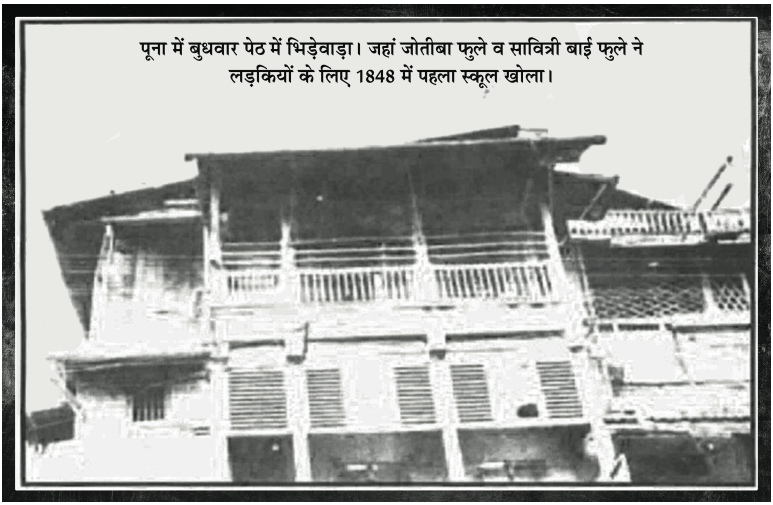

पूना में बुधवार पेठ में भिड़ेवाड़ा। जहां जोतीबा फुले व सावित्री बाई फुले ने लड़कियों के लिए 1848 में पहला स्कूल खोला।

1 जनवरी 1848 को खोले स्कूल में दर्ज लड़कियों के नाम

1	अन्नपूर्णा जोशी	आयु 5 साल
2	सुमती मोकाशी	आयु 4 साल
3	दुर्गा देशमुख	आयु 6 साल
4	माधवी थते	आयु 6 साल
5	सोनू पवार	आयु 4 साल

6	जानी करडिले	आयु 5 साल
	इनमें 4 ब्राह्मण, एक धनगर (गड़रिया), एक मराठा जाति से संबंधित	

सावित्रीबाई फुले और जोतिबा फुले के लड़कियों और अछूतों के लिए शिक्षा के काम का रूढ़िवादी समाज ने विरोध किया। सावित्रीबाई फुले जब स्कूल के लिए निकलती तो उन पर गोबर-पत्थर फेंकते। गोबर से सावित्री बाई फुले की साड़ी गंदी हो जाती थी। इसकारण वह एक अतिरिक्त साड़ी

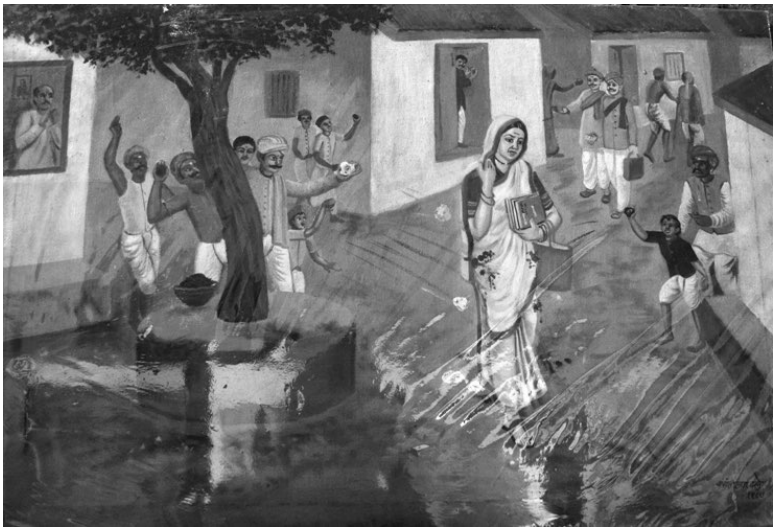

अपने साथ लेकर जाती थी। स्कूल में जाकर साड़ी बदल लेती थीं। गोबर-पत्थर फेंकने वालों की इन हरकतों से वह निराश नहीं हुई। उनसे वह कहती

'मेरे भाइयो, मुझे प्रोत्साहन देने के लिए, आप मुझपर पत्थर नहीं, फूलों की वर्षा कर रहे हैं, तुम्हारी इस करतूत से मुझे यही सबक मिलता है कि मैं निरंतर अपनी बहनों की सेवा में लगी रहूं। ईश्वर तुम्हें सुखी रखे।'

फुले दंपति द्वारा खोले गए स्कूल

1	भिड़ेवाड़ा, पुणे	1-1-1848
2	हरिजनवाड़ा, पुणे	15-5-1849
3	हड़पसरस जिला पुणे	1-8-1848
4	ओतूर, जिला पुणे	5-12-1848
5	सासवड़, जिला पुणे	20-12-1849
6	आल्हाट का घर, कसबा पुणे	1-7-1849
7	नायगांव, तालुका खंडाला, जिला सतारा	15-7-1849
8	शिरवल, तालुका खंडाला, जिला सतारा	18-7-1849
9	तलेगांव-ढमढेरे, जिला पुणे	8-8-1849
10	शिरवर, जिला पुणे	8-8-1849
11	अंजीरवाड़ी, माजगांव	3-3-1850
12	करंजे, जिला सतारा	6-3-1850
13	भिंगार	19-9-1850
14	मुंढवे, जिला पुणे	1-12-1850
15	आप्पासाहब चिपलूणकर हवेली, पुणे	3-7-1851
16	नाना पेठ, पुणे	1-12-1851
17	रास्ता पेठ, पुणे	17-9-1851
18	बेताल पेठ, पुणे	15-3-1852

स्रोत:एम.जी. माली; क्रांतिज्योति सावित्रीबाई फुले; प्रकाशन विभाग,भारत सरकार,पृ.-25

एक बार तो बात काफी आगे बढ़ गई। एक लंबे-तगड़े व्यक्ति ने सावित्रीबाई का रास्ता रोक लिया। भला-बुरा कहने लगा। सावित्रीबाई ने रास्ता छोड़ने को कहा लेकिन वह सावित्री के रास्ते से नहीं हटा। सावित्रीबाई ने निडरता से उसे थप्पड़ रसीद कर दिया तो वह भाग खड़ा हुआ।

सावित्रीबाई में शिक्षा के प्रति इतनी लगन पैदा हो गई थी कि अपनी जान और समाज की निंदा-भर्त्सना को सहन करके भी इस काम में लगी थी। सावित्रीबाई का मानना था कि जब तक सामाजिक जीवन में अज्ञानता है तब तक सुधार और तरक्की संभव नहीं है। अज्ञानता को वह मानवता का सबसे घातक दुश्मन समझती थी और इसे अपने जीवन से ढूंढ ढूंढकर और पीटकर भगाने का आह्वान करती थी। इस संबंध में 'अज्ञान' शीर्षक उनकी एक कविता है

अज्ञान

एक ही दुश्मन है हम सबका
सब मिलकर खदेड़ो उसे पीटकर

सिवाय उसके अन्य दुश्मन नहीं
ढूंढकर दिमाग से निकालो उसे

ढूंढा क्या
मिला क्या

विचार करके बताओ बच्चो
फटाफट बोलो नाम उसका

हार गए क्या
मानते हो क्या

बताती हूं मैं दुष्ट शत्रु के बारे में
नाम स्पष्ट है एक ही उसका

अज्ञान

कस के पकड़ो, पीटो उसे
अपने बीच से खदेड़ दो।

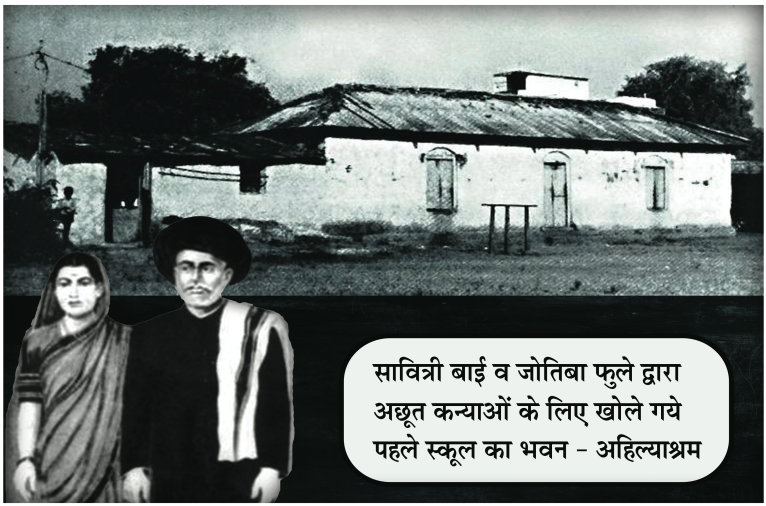

शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों की सृजनशीलता का विकास ही फुले दम्पति का मकसद था। अपने इस मकसद में उनको सफलता मिली इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि स्कूल की एक लड़की पुरस्कार प्राप्त करने गई तो उसने समारोह के मुख्य अतिथि से कहा कि

'पुरस्कार के रूप में हमें खिलौने नहीं चाहिए, हम अपने स्कूल में एक पुस्तकालय चाहते हैं।'

इसका एक उदाहरण और भी दिया जा सकता है। सावित्रीबाई की 14 वर्षीय मातंग (अछूत) छात्रा मुक्ता ने सन् 1855 में एक आत्मकथात्मक निबंध लिखा। जो उस समय बहुत चर्चित हुआ था। अखबारों और बॉम्बे प्रेसीडेंसी एजुकेशन रिपोर्ट में भी प्रकाशित हुआ था। वह लिखती हैः

"ये लड्डूखाऊ (लड्डू खाने वाले) ब्राह्मण कहते हैं कि वेदों पर सिर्फ उनका एकाधिकार है। गैर-ब्राह्मणों को वेदों को पढने का अधिकार नही है। क्या इससे यह साबित नही होता कि हमारा कोई धर्म नहीं है क्योंकि हमें धर्म ग्रंथों में झांकने तक का अधिकार नहीं है ? हे भगवान्, कृपा करके हमें बताओ हम किस धर्म का पालन करें।"[6]

भारत की पहली महिला शिक्षिका क्रांति ज्योति सावित्री बाई फुले के सम्मान में 1998 में भारत सरकार द्वारा जारी डाक टिकट

[6] हरि नरके ; सावित्रीबाई फुले स्मृति व्याख्यान ; एन सी ई आर टी

सावित्रीबाई फुले की सहयोगी फातिमा शेख

फातिमा शेख

फुले दम्पति के इस क्रांतिकारी कार्य में एक मुस्लिम स्त्री ने भी महत्वपूर्ण सहयोग दिया है। उस मुस्लिम महिला का नाम फातिमा शेख है। उन्नीसवीं सदी की पहली मुस्लिम अध्यापिका फातिमा शेख ही है।

फातिमा जोतीराव फुले के मित्र उस्मान शेख की बहन थी। जोतीराव के पिता द्वारा उन्हें घर से निकाल देने के बाद, उस्मान शेख ने ही अपने घर में उन्हें आश्रय दिया था। वे प्रगतिशील विचारों के थे। फुले दम्पति ने जो 'नार्मल स्कूल' स्थापित किया था, उसमें फातिमा शेख ने अध्यापन प्रशिक्षण पूर्ण किया था। सावित्रीबाई और फातिमा मिलकर अछूत बच्चों के स्कूल का संचालन करती थीं। सावित्री बाई फुले ने अक्तूबर 1868 में जोतिबा को लिखे पत्र में इसका जिक्र करते हुए लिखा हैः

'मैं जानती हूँ कि मेरे न होने से फ़ातिमा को कितनी मुश्किल हुई होगी लेकिन मुझे यकीन है वह समझेगी और शिकायत नहीं करेगी।'

जोतीराव फुले के निकटतम सहयोगी महाघट पाटिल ने उनके प्रथम स्मृति दिवस के अवसर पर सन् 1891 में फुले का पहला जीवन चरित्र प्रकाशित किया था। यह पुस्तक उन्होंने सावित्रीबाई फुले को अर्पित की। उन्होंने लिखा

"आज जोतीबा हमारे बीच नहीं हैं, उनके कार्य की संपूर्ण जिम्मेदारी जब वे जीवित थे तभी से सावित्रीबाई ने संभाली है। आज (उनके निधन के बाद) सत्यशोधक समाज की संपूर्ण जिम्मेदारी उन्होंने खुद ही उठाई है। यह किताब मैं उनको समर्पित करता हूं।"

सावित्रीबाई फुले की प्रेरणा स्त्रोत सगुणाबाई

सावित्रीबाई फुले और जोतिबा फुले के जीवन को जिस व्यक्तित्व ने प्रभावित किया उसका नाम है सगुणाबाई। जोतिबा फुले ने सगुणा बाई को अपनी निर्मिकाचा शोध पुस्तक समर्पित की। इस समर्पण में उन्होंने लिखा है कि

> "सत्यस्वरूप सगुणाबाई क्षीरसागर को, आपने मेरी केवल परवरिश ही नहीं की अपितु मुझे इंसान भी बनाया। मैंने आप ही से यह सीखा कि दूसरों के बच्चों पर किस तरह प्रेम करें। इसलिए कृतज्ञता के साथ प्रस्तुत पुस्तिका रचियता की ओर से आपको नजराना।"

य ह जि ज्ञा सा हो ना स्वाभाविक है कि सगुणाबाई कौन थी ?

जोतिराव फुले की मां चिमाबाई और घोंडाबाई दो बहनें थी। घोंडाबाई का विवाह हड़पसर के दयासागर परिवार में हुआ। सगुणाबाई घोंडाबाई की बेटी थी और जोतिबा फुले की मौसेरी बहन । सगुणाबाई का जन्म दयासागर परिवार में हुआ था इसलिए उन्हें सगुणा दयासागर भी कहा जाता है। सगुणाबाई के पति का देहावसान हो गया। अपने मायके में भी कोई सहारा नहीं था। उसने जॉन नामक ईसाई मिशनरी के घर सेविका का काम किया।

जोतिबा उस समय केवल नौ महीने के थे, जब मां चिमा बाई की मृत्यु हुई। पिता गोविंदराव के सामने जोतिबा के लालन-पालन की समस्या आ

खड़ी हुई। सगुणाबाई ने जोतिबा का पालन-पोषण का जिम्मा लिया। सगुणाबाई ने जोतिबा का लालन-पालन बहुत लाड़-प्यार से किया। सगुणाबाई का जोतिबा फुले के जीवन को दिशा देने में महत्वपूर्ण योगदान है।

जब पिता गोविंद राव ने जोतिबा को स्कूल से हटा लिया तो सगुणाबाई ने लिजिट साहब और मुंशी गफ्फार बेग से गोविंदराव को समझाने के लिए प्रार्थना की। मुंशी गफ्फारबेग के समझाने पर जोतिबा को दोबारा स्कूल में दाखिल करवाया। सावित्रीबाई फुले और जोतिबा फुले इनको आऊ कहकर बुलाते थे।

सावित्री बाई फुले ने काव्यफुले संग्रह में कविता लिखी 'हमारी आऊ'।

हमारी आऊ
कड़ी मेहनती
स्नेहिल और दयालू

सामने उसके
उथला समंदर
आकाश बौना

हमारी आऊ
घर आई
जैसे मोर बैठा

साक्षात मूर्ति
ज्यों विद्या की देवी
हमारे दिल में बसी

महात्मा जोतिबा फुले ने सगुणाबाई के बारे में लिखा हैः

"मां जैसा दूसरा देवता नहीं, लेकिन जिसने मुझे जन्म दिया वह मुझे याद नहीं, मेरे जीवन की यह कमी सगुणाबाई ने पूरी की। उसकी कामना थी कि मैं बड़ा फादर बनूं। न जाने क्यों वह मुझे ज्ञानबोध कराती थी। बचपन में तो उसने ममता से मेरी सेवा-सुश्रुषा की। कभी न घटने वाली ज्ञान संपति उसी ने मुझे दी। धन्य है मेरी आऊ।"

सावित्री बाई फुले ने 'बावन्नकशी सुधा रत्नाकर' काव्य संग्रह में जोतिबा का जीवन चरित लिखते हुए सगुणाबाई के बारे में लिखा है

नौ मास का छोड़ माता चिमा चल बसी
नन्हें जोति के पालन की मुसीबत पड़ी
पर लाड़-दुलार के लिए
मिलाया सगुणा को ईश्वर की लीला।।

मिला ज्ञान विदेशी-विधर्मी पादरी से
वहां खेलता पला-बढ़ा बालक जोति
सगुणा दयासागर ज्ञान बढ़ाए
ऐसे काढ़ते, घोकते अक्षर सीखे।।

6 जुलाई 1854 को एक रिश्तेदार के घर में हैजे की बीमारी ने सगुणाबाई को मौत की नींद सुला दिया। फुले दम्पति के जीवन में सगुणाबाई का महत्वपूर्ण योगदान है। ममता और मानव सेवा का जो पाठ सगुणाबाई ने पढ़ाया वो जोतिबा के कार्यों में झलकता है।

टामस क्लार्कसन

टामस क्लार्कसन कैंब्रिज विश्वविद्यालय का छात्र था। अमरीकी लोग अफ्रीका के नीग्रो लोगों को गुलाम बनाकर अमानवीय व्यवहार करते थे। टामस क्लार्कसन इस अन्याय का विरोध करना शुरु किया और गुलामी के खिलाफ कानून बनाने के लिए सरकार को विवश कर दिया। जोतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले ने टामस क्लार्कसन की जीवनी पढ़ी।

टॉमस पेन

थामस पेन की 'राइट ऑफ मैन' पुस्तक के अध्ययन ने फुले दम्पति की शूद्रों की स्थिति और आम लोगों के अधिकारों को समझकर उन्हें प्राप्त करने के संघर्ष की दिशा तय करने में बहुत मदद की।

भारतीय समाज में शूद्रों और स्त्रियों की तुलना अमेरिका के नीग्रो दासता से करते हुए यहां की गुलामी को नीग्रो की गुलामी से अधिक क्रूर, बर्बर और अमानुषिक ठहराया। नीग्रो गुलामी का आधार धर्मग्रंथ नहीं थे, जबकि यहां धर्मशास्त्र के माध्यम से गुलामी को वैधता दी गई थी। धर्म से जोड़कर दासता को शारीरिक गुलामी से मानसिक गुलामी तक पहुंचाया था। मानसिक दासता ने समाज के शोषित-पीड़ित वर्ग से स्वाभिमान और आत्मविश्वास की भावना को ही समाप्त कर दिया था। इसी के चलते स्त्री और शूद्र का आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक शोषण करने में सफल हुए।

जोतीराव ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'गुलामगिरी' अमेरिका के मुक्तिकामी संघर्ष के योद्धाओं को समर्पित किया कि

यूनाइटेड स्टेट्स के सदाचारी जनों ने गुलामों को दासता से मुक्त करने के कार्य में जो उदारता, निष्पक्षता उवं परोपकार वृत्ति दिखलाई उस हेतु उनके सम्मानार्थ यह छोटी सी पुस्तक मैं उन्हें प्रीतिपूर्वक भेंट करता हूं एवं आशा करता हूं कि मेरे देशवासी बन्धु अपने भाई-बन्धुओं को ब्राह्मणों की गुलामी से मुक्त करने हेतु उस प्रशंसनीय कार्य का अनुकरण करेंगे।

दृढ निश्चयी व आशावादी सावित्रीबाई फुले

सावित्रीबाई फुले और जोतिबा फुले को शूद्रों-अतिशूद्रों को शिक्षा देने के काम के लिए परिवार तथा समाज से प्रताड़ना मिली। समाज के वर्चस्वी वर्ग को शिक्षा के प्रसार से अपना आधिपत्य टूटता हुआ दिखाई दे रहा था इसलिए तरह तरह से इनको सताते थे। जोतिबा के पिता ने ब्राह्मण समाज के डर से अपने बेटे को घर से ही निकाल दिया था। इस कारण आर्थिक तौर पर भी कष्ट सहन करने पड़े और इससे उनके काम में भी बाधा पहुंची।

सावित्रीबाई फुले के भाई भी उनके काम को अच्छा नहीं समझते थे। उनके सामाजिक बहिष्कार को उचित ठहराते और भला-बुरा कहते। सावित्रीबाई फुले ने इसकी परवाह नहीं मानी और अपने पति के साथ समाज से ऊंच-नीच समाप्त करने, सबको ज्ञान प्राप्त करने और सम्मान के साथ जीवन जीने लायक समाज निर्माण के काम में जुटी रही। रूढ़िवादी शक्तियों से कभी घबराई नहीं। जोतिबा फुले को हमेशा हिम्मत दी। सावित्रीबाई के दृढ़ निश्चय व आशावादी सोच का अनुमान उनके 10 अक्तूबर 1856 में जोतिबा को लिखे पत्र से सहज ही हो जाता है।

10 अक्तूबर 1856

सत्यमूर्ति, जोतिबा मेरे स्वामी

सावित्री का सलाम!

इतने उतार-चढ़ावों के बाद, लगता है मेरी तबियत अब पूरी तरह सुधर गई है। मेरे भाई ने मेरी बीमारी में मेरी बहुत सेवा की है। उनकी सेवा और भक्तिभाव दर्शाते हैं कि वह सच में कितने स्नेही हैं! जैसे ही मैं पूरी तरह ठीक हो जाऊँगी मैं पुणे आ जाऊँगी। कृपया मेरी चिंता न करें। मैं जानती हूँ कि मेरे न होने से फ़ातिमा को कितनी मुश्किल हुई होगी लेकिन मुझे यकीन है वह समझेगी और शिकायत नहीं करेगी।

एक दिन हम यूँ ही बातचीत कर रहे थे कि मेरे भाई ने कहा, "तुम्हें और तुम्हारे पति को जात निकाला ठीक ही दिया गया है क्योंकि तुम दोनो अछूतों (महार और मांग) की सेवा करते हो। अछूत पतित लोग हैं और उनकी मदद करने के द्वारा तुम परिवार का नाम बदनाम कर रहे हो। इसलिए मैं कहता हूँ कि तुम हमारी जाति की प्रथाओं के अनुसार व्यवहार करो और ब्राह्मणों के आदेशों का पालन करो।' मेरे भाई की इन कठोर बातों से माँ बहुत ही व्यथित हुई। हालाँकि मेरे भाई भले आदमी हैं, उनकी सोच बहुत संकीर्ण है इसलिए उन्होंने हमारी कठोर आलोचना करने और हमें भला-बुरा करने में संकोच नहीं किया। मेरी माँ ने उन्हें डाँटा नहीं लेकिन कोशिश की कि वह अपने होश में आएं, "भगवान ने तुम्हें इतनी अच्छी ज़बान दी है लेकिन उसका दुरुपयोग करने का कोई लाभ नहीं।"

मैंने अपने सामाजिक कार्य का बचाव करने और उनकी गलतफ़हमी को दूर करने का प्रयास किया। मैंने उन्हें कहा, "भैया आपकी सोच संकीर्ण है, और ब्राह्मणों की सोच ने उसे और भी बदतर बना दिया है। बकरी और गाय जैसे जानवर आपके लिए अछूत नहीं है और बड़े प्यार से उन्हें छूते हो। नागपँचमी के दिन आप ज़हरीले साँपों को पकड़ कर उन्हें दूध पिलाते हो। लेकिन आप महार और मांग को, जो आपकी और मेरी तरह इनसान हैं, अछूत समझते हैं। क्या आप मुझे इसकी कोई वजह बता सकते हो? जब ब्राह्मण अपने पवित्र वस्त्र पहन कर पूजा-पाठ करते हैं तो वह आपको भी अशुद्ध और अछूत मानते हैं, वे डरते हैं कि आपका स्पर्श उन्हें दूषित कर देगा। वे आपके साथ महारों से अलग व्यवहार नहीं करते।"

जब मेरे भाई ने यह सुना तो उनका चेहरा लाल हो गया लेकिन उन्होंने मुझसे पूछा, "तुम उन महार और मांगों को क्यों पढ़ाती हो? लोग तुम्हें गालियाँ देते हैं कि तुम अछूतों को पढ़ाती हो। मुझसे बरदाश्त नहीं होता जब लोग तुम्हें बुरी बातें बोलते हैं और तुम्हारे काम में अड़ंगा डालते हैं। मैं ऐसा अपमान सहन नहीं कर सकता।" मैंने उन्हें बताया कि अँग्रेज़ लोगों के लिए क्या कर रहे हैं। मैंने कहा, "पढ़ाई-लिखाई की कमी निरी पाशविकता है। ज्ञान हासिल से ही ब्राह्मणों को उच्च प्रतिष्ठा हासिल हुई है। शिक्षा और ज्ञान उत्कृष्ट

चीज़ें हैं। जो ज्ञान हासिल कर लेता है वह अपना निचला दर्जा त्याग कर ऊँचा दर्जा प्राप्त करता है। मेरे पति देवता समान पुरुष हैं। इस दुनिया में उनके बराबर कोई नहीं, किसी से उनकी तुलना नहीं की जा सकती। उन्हें लगता है कि अछूतों को ज्ञान अर्जित करना चाहिए और आज़ादी प्राप्त करनी चाहिए। वह ब्राह्मणों से टक्कर लेते हैं और अछूतों को पढ़ाने के लिए उनसे संघर्ष करते हैं क्योंकि उनका मानना है कि वह भी बाकी लोगों की तरह ही मनुष्य हैं और उन्हें भी गरिमामय मनुष्यों की तरह जीना चाहिए। इसके लिए उन्हें शिक्षित होना होगा। मैं भी उन्हें इसी कारण से पढ़ाती हूँ। इसमें गलत क्या है? हाँ, हम दोनों लड़कियों को, औरतों को, मांगों और महारों को शिक्षा देते हैं। ब्राह्मण नाराज़ हैं क्योंकि उन्हें लगता है इससे उन्हें परेशानी होगी। इसलिए वे हमारा विरोध करते हैं और यह मंत्र जपते रहते हैं कि ऐसा करना हमारे धर्म के खिलाफ़ है। वे हमारी निंदा करते और हमें बहिष्कृत करते हैं और आपके जैसे अच्छे लोगों के मनों में भी जहर घोलते हैं।

"आपको ज़रूर याद होगा कि अँग्रेज़ सरकार ने मेरे पति को उनके महान कार्य के लिए सम्मानित करने के लिए एक समारोह का आयोजन किया था। उनके सम्मान ने दुष्ट लोगों के मनों में जलन पैदा कर दी। मैं आपको बताना चाहती हूँ कि मेरे पति आपकी तरह केवल ईश्वर का नाम लेने या तीर्थ करने वाले नहीं हैं। वह दरअसल ईश्वर का ही कार्य कर रहे हैं। और उसमें मैं उनकी सहायता करती हूँ। और मुझे यह काम अच्छा लगता है। ऐसी सेवा करने के द्वारा मुझे अपार खुशी प्राप्त होती है। इससे यह भी पता चलता है कि कोई इन्सान किस ऊँचाई तक पहुँच सकता है।"

माँ और भैया मेरी बात बड़े ध्यान से सुन रहे थे। मेरे भाई आखिरकार मुझसे सहमत हो गए, जो कुछ उन्होंने कहा था उसके लिए पश्चाताप किया और मुझसे माफ़ी माँगी। माँ ने कहा, "सावित्री तुम्हारी ज़ुबान से तो स्वयं भगवान के शब्द सुनाई दे रहे हैं। तुम्हारी बुद्धिमतापूर्ण बातें सुन कर हम तो धन्य हो गए।" माँ और भाई के द्वारा ऐसी सराहना सुन कर मुझे दिली खुशी हुई। इससे आप कल्पना कर सकते हैं कि पुणे की तरह यहाँ भी कई कमअक्ल लोग लोगों के दिलों में ज़हर घोल रहे हैं और हमारे खिलाफ़ झूठी बातें फैला

रहे हैं। लेकिन हमें उनसे डर कर इस भले काम को जो हमने शुरू किया है क्यों छोड़ दें? बेहतर यही होगा कि हम इस काम में लगे रहें। हम इन सब पर विजयी होंगे और भविष्य में सफलता हमारे ही हाथ लगेगी। भविष्य हमारा है।

मैं और क्या लिखूँ?

सविनय प्रणाम,

आपकी,

सावित्री

" इस भूमंडल पर जितने भी महान सत्पुरुषों ने जन्म लिया और धर्म के महान ग्रंथ लिखे हैं, उन सभी ग्रंथों में तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप उनकी समझ के अनुसार कुछ न कुछ सत्य अवश्य है। इसलिए यदि किसी परिवार की नारी को बौद्ध धर्म का ग्रंथ पढ़कर बौद्ध धर्म स्वीकार करने की अभिलाषा होती हो तो वह बौद्ध धर्म स्वीकार कर ले। यदि उसका पति बाइबल पढ़कर प्रभावित है तो वह ईसाई धर्म स्वीकार कर सकता है। उसकी कन्या यदि कुरान शरीफ पढ़कर इस्लामी बनने की ख्वाहिश रखती है तो वह अपनी मर्जी से मुसलमान बन जाए। वैसे ही, उसी परिवार का बेटा सार्वजनिक सत्य धर्म का ग्रंथ पढ़कर अपनी मर्जी से सार्वजनिक सत्य धर्म को अपना सकता है। कोई किसी से नफरत न करे। परिवार में सभी अपने-अपने धर्म का पालन करते हुए आपसी प्रेम के साथ मधुर संबंध बनाए रह सकते हैं। उन सबको यह मानकर जीवन बिताना चाहिए कि वे सब उस स्रष्टा के परिवार की संतानें हैं। यदि वे इस तरह प्रेम से जीवन-यापन करते हैं तो हम सबको उस सृष्टिकर्ता के राज्य का आनंद प्राप्त हो सकता है।"

- जोतिबा फुले, सार्वजनिक सत्य धर्म में सत्य पर विचार करते हुए

समानता और न्याय की पुरोधा

जहां कुछ भी अन्याय हो रहा होता सावित्रीबाई फुले जोखिम उठाकर वहां पहुंचती और उसका प्रतिकार करती। वे अपने मायके गई हुई थी वहां एक ब्राह्मण लड़के और अछूत लड़की के बीच प्रेम-प्रसंग को लेकर लोग उनकी जान लेने पर उतारू थे। सावित्रीबाई ने हस्तक्षेप करके उनकी जान बचाई थी। 29 अगस्त 1868 को जोतिबा को लिखे पत्र से पूरी घटना की जानकारी मिलती है।

29 अगस्त 1868
नायगाँव, पेटा खंडाला
सतारा

सत्यमूर्ति, जोतिबा मेरे स्वामी
सावित्री का सलाम!

मुझे आपका पत्र मिला। हम यहाँ ठीक-ठाक हैं। मैं अगले महीने की पाँच तारीख को आ रही हूँ। इस बारे में मेरी चिंता मत करें। इस बीच, यहाँ एक अजीब घटना घटी है। किस्सा कुछ ऐसे है। गणेश नाम का एक ब्राह्मण गाँव-गाँव जाकर धार्मिक कर्मकांड करता और लोगों को उनका भविष्य बताता है। इसी से उसकी रोज़ी-रोटी चलती थी। गणेश और एक किशोर लड़की शरजा जो महार बिरादरी से है को एक-दूसरे से प्रेम हो गया। जब लोगों को उनके संबंध के बारे में पता चला तो लड़की का छठा महीना चल रहा था। जब लोगों को यह पता चला तो उन्होंने गाँव-भर में घुमाया और उन्हें मार डालने की धमकी दी।

मुझे इस घातक योजना का पता चला तो मैं तुरंत उस स्थान पर पहुँची और उन्हें डरा-धमका कर वहाँ से भगा दिया। मैंने उन्हें बताया कि अगर वह यह हत्याएँ करेंगे तो ब्रितानी कानून के तहत उन्हें इसके गंभीर परिणाम भुगतने होंगे। मेरी बात सुनने के बाद उन्होंने अपना इरादा बदल दिया।

साधुभाऊ ने गुस्से में भर कर कहा कि इस कपटी ब्राह्मण लड़के और अछूत लड़की को गाँव छोड़ कर चले जाना चाहिए। दोनों पीड़ित ऐसा करने को राज़ी हो गए। मेरे दखल ने इस जोड़े की जान बचा ली और वह आभारस्वरूप मेरे पाँव में गिर कर रोने लगे। मैंने किसी तरह उन्हें सांत्वना दी और शांत किया। अब मैं उन दोनों को आपके पास भेज रही हूँ। मैं और क्या लिखूँ?

आपकी,

सावित्री

सावित्रीबाई फुले इतना जोखिम इसलिए उठाती थी कि वे समतामूलक समाज में विश्वास करती थी। शोषण चाहे वह लैंगिक हो या आर्थिक उसकी जड़ में गैर-बराबरी है। सावित्रीबाई फुले का संघर्ष असमानता को वैधता देने वाली विचारधारा के खिलाफ था। एक भाषण में उन्होंने कहा है

> 'सर्व मानव एक ही ईश्वर की संतान हैं, यह बात जब तक हमें समझ में नहीं आती, तब तक ईश्वर का सत्य रूप हम जान नहीं सकते। हम सभी मानव भाई-भाई हैं, ऐसी भावना निर्माण होना ही, ईश्वर की पहचान करने के लिए महत्वपूर्ण लक्षण है, परन्तु इस बात की उपेक्षा करते हुए हम अपने-आपको श्रेष्ठ और महार-मांग इनको अछूत एवं नीच मानते हैं। स्पृश्य-अस्पृश्य भेदभाव मानना यह मूर्खता है। जो लोग यह मानते हैं और उसकी पूजा करते हैं, उनके लिए परमेश्वर का सही रूप पहचानना संभव नहीं है। ऊंची जाति और नीच जाति परमेश्वर कृत नहीं है। स्वार्थी मनुष्यों ने अपनी श्रेष्ठता को अबाधित रखने के लिए और उसके द्वारा अपने वंशजों के हितों की रक्षा करने के लिए निर्माण किया हुआ, यह पाखंडी तत्वज्ञान है। दूसरे मनुष्यों को अछूत मानना, मानवता का लक्षण नहीं है। अत: प्रत्येक व्यक्ति को उसका तिरस्कार करना चाहिए। इसी में प्रत्येक मनुष्य का, समाज का तथा मानव संस्कृति का कल्याण है।' (संपादक हरि नरके, महात्मा फुले : साहित्य और विचार में डी. के. खापर्डे के 'क्रांतिज्योति सावित्रीबाई फुले' के आलेख से)

बाल हत्या प्रतिबंधक गृह

सन् 1863 में सावित्रीबाई और जोतिबा फुले ने 'शिशु हत्या प्रतिबंधक गृह' शुरू करके क्रांतिकारी कदम उठाया। उस जमाने में बाल-विवाह होते थे और अनेक कारणों से पति की मृत्यु के कारण बाल-विधवाओं की संख्या काफी थी। इन विधवाओं के यौन-शोषण के कारण ये गर्भवती हो जाती थी। सामाजिक सम्मान बचाने के लिए कई अमानवीय कदम उठाए जाते थे। गर्भ को गिराने के प्रयास किए जाते थे, जिससे महिलाओं का स्वास्थ्य खराब होता था। कई मामलों में महिलाएं आत्महत्या कर लेती थी। कई मामलों में नवजात शिशु की हत्या की जाती थी। कई मामलों में महिलाओं की हत्या कर दी जाती थी और कई मामलों में उन्हें घर से बाहर खदेड़ दिया जाता था।

विशेषतौर पर गौर करने की बात यह है कि इसमें अधिकांश महिलाएं उच्च जाति से ताल्लुक रखती थी, क्योंकि शास्त्रीय परंपराओं व मान्यताओं को वही समाज अधिक मानता था। निम्न अथवा मध्यम जातियों पर शास्त्रीय परंपराओं की जकड़ अधिक नहीं होने के कारण विधवाओं का विवाह कर दिया जाता था।

सावित्रीबाई व जोतिराव फुले ने अपने घर में विधवाओं के लिए प्रसुति-गृह खोला। इस बाल हत्या प्रतिबंधक गृह की सूचना के लिए पूना में जगह-जगह पोस्टर लगाए गए। इन पोस्टरों पर लिखा थाः

'विधवाओं! यहां अनाम रहकर बिना किसी बाधा के अपना बच्चा पैदा कीजिए। अपना बच्चा साथ ले जाएं या यहीं रखें, यह आपकी मर्जी पर निर्भर रहेगा।'

यह समस्या कितनी भयंकर थी इसका अनुमान इससे ही लगाया जा सकता है कि यहां 35 बच्चे पैदा हुए थे, जिनमें से केवल 5 बच्चे जिंदा बचे थे। क्योंकि गर्भ गिराने के प्रयास में उनको पहले ही चोट पहुंचाई जा चुकी थी।

हरि नरके ने लिखा है कि "शिशुहत्या के विरुद्ध संरक्षण गृह" के बारे में सही जानकारी अभी हाल में ही उपलब्ध हो पायी है। इसमें महत्वपूर्ण बात यह है कि यह 'घर' केवल 'ब्राह्मण विधवाओं' के लिए ही खोला गया था और सावित्रीबाई ने ही इसकी पहल की थी। इस सम्बन्ध में समस्त जानकारी ज्योतिबा फुले द्वारा 4 दिसम्बर, 1884 को बम्बई सरकार के अवर सचिव को लिखे गए पत्र में दर्ज की गयी है।

यहाँ पर एक घटना का उल्लेख करना पाठकों के लिए लाभप्रद रहेगा। ज्योतिबा फुले के मित्र गोवंडे के यहाँ एक युवा ब्राह्मण विधवा काशीबाई रसोइये के रूप में कार्य करती थी। काशीबाई एक गरीब किन्तु एक सुन्दर महिला थी और एक सम्मानित ब्राह्मण परिवार से ताल्लुक रखती थी। पड़ोस में रहने वाले एक कुटिल शास्त्री ने इस अनपढ़ महिला का फायदा उठाया जिसके फलस्वरूप वह गर्भवती हो गई। जब गर्भपात का कोई उपाय सफल नही हुआ तो उसने एक सुन्दर शिशु को जन्म दिया। चूँकि उस शास्त्री ने इस शिशु को अपनाने से इनकार कर दिया तो काशीबाई बुरी तरह से फंस गयी। अब उसे समाज का भय था कि समाज उसे जीने नहीं देगा इसलिए उसने

मासूम शिशु की गला रेत कर हत्या कर दी। गोवंडे के आँगन में स्थित कुएं में उसने शव को फेंक दिया। बाद में पता चलने पर उस पर मुकद्दमा हुआ और उसे अंडमान में 'काले पानी' की सजा हुई। यह घटना 1863 में घटित हुई। पहली बार किसी महिला को इतनी कठोर सजा मिली थी।

इस घटना से सावित्रीबाई और ज्योतिबा फुले बहुत परेशान और दुखी हुए। उस समय उनकी आय बहुत सीमित थी। हालांकि उन्हें रोजी-रोटी के भी लाले पड़ रहे थे फिर भी उनका हृदय करुणा और उदारता का सागर था। उन्होंने बिना देर किये 395, गंजपेठ, पुणे स्थित अपने मकान में ऐसी ब्राह्मण विधवाओं के लिए एक आश्रयगृह (शेल्टर होम) की शुरुआत कर दी। पूरा देश जबकि इस घटना की चर्चा में मशगूल था, फुले दम्पति ने इन शोषित महिलाओं के लिए वास्तविक कार्य किया। उन्होंने पूरे शहर और तीर्थस्थलों पर "काले पानी से बचने का उपाय" की घोषणा करते हुए विज्ञापन (पोस्टर) लगा दिए और इस प्रकार शेल्टर होम के बारे में जानकारी फैलती गई। 1884 में विभिन्न स्थानों से 35 ब्राह्मण विधवाएं शेल्टर होम में रह रहीं थीं। सावित्रीबाई उन महिलाओं के प्रसव में स्वयं ही मदद करती थीं, और उनकी देख-भाल भी करती थीं। (हरि नरके, सावित्रीबाई स्मृति व्याख्यान)

महाराष्ट्र की प्रख्यात लेखिका इन्दुमति केलकर एक लेख में सावित्रीबाई फुले के साहस के संबंध में कहती हैं, "अज्ञात मां-बाप के निराश्रित बच्चे की परवरिश अपने बच्चे के समान करने वाली उदार हृदय स्त्री मिल सकती है, लेकिन किसी विधवा स्त्री से उत्पन्न बच्चे को अपना समझकर उसकी परवरिश करने वाली स्त्री मिलना असंभव है। कोई यह कह सकता है कि केवल भावुक मानवी कल्पना के प्रभाव में आकर उन्होंने यह साहस किया। लेकिन यह तो हम हमेशा अनुभव करते हैं कि मनुष्य की मानवता भय की कल्पना से ही मर जाती है। जाति, वंश, धर्म और परंपरा के दायरे की सीमा पार कर चुकी, विचारनिष्ठ स्त्री ही इस प्रकार बगावत कर सकती है।"

ममता की मूर्ति सावित्रीबाई फुले

सावित्रीबाई फुले का जीवन ममता का पर्याय है। जोतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले ने शिक्षा के लिए दूर दूर से आने वाले विद्यार्थियों के लिए अपने घर में ही छात्रावास भी चला रहे थे। मुंबई का एक विद्यार्थी लक्ष्मण कराडी जाया उनके हॉस्टल में रहा था। अपने संस्मरणों में उसने सावित्रीबाई फुले के व्यक्तित्व के बारे में लिखा कि वे मां की तरह देखभाल करती थी। "मैंने सावित्रीबाई जैसी इतनी दयालु महिला नहीं देखी। उन्होंने मुझे मां से भी अधिक प्यार दिया।"

महाडू वाघले नामक छात्र ने अपने संस्मरण में सावित्रीबाई फुले के स्वभाव, सादगीपूर्ण जीवन तथा फुले दम्पति के बीच प्रगाढ़ प्रेम के बारे में लिखा है- "वे बहुत उदार थीं और उनका हृदय दयालुता से पूर्ण था। गरीबों और जरुरतमंदों के प्रति वे अत्यंत करुणाशील थी। वे भूखों को भोजन का दान करती रहती थीं। यदि वे किसी गरीब महिला को फटे-पुराने चीथड़ों में

देखतीं, तो अपने घर से उसे साड़ियाँ निकाल कर दे देतीं थीं। उनकी इन आदतों से घर के खर्चे बढ़ते गए। तात्या (जोतिबा फुले) उनसे कभी-कभार कहते कि किसी को इतना ज्यादा खर्च नहीं करना चाहिए। इस पर वे मुस्कराकर जबाब देतीं, "मरेंगे तो क्या ले जायेंगे!" इसके बाद तात्या चुप हो जाते क्योंकि उनके पास कोई जबाब नहीं होता। वे एक-दूसरे से अथाह प्रेम करते थे।"

महिलाओं के उत्थान को लेकर सावित्रीबाई अत्यधिक उत्साहित थीं। वो एक सुन्दर दिखने वाली और मध्यम कद-काठी की महिला थीं। उनका व्यवहार अत्यंत शांत एवं संयत था। उनके संयत स्वभाव से ऐसा लगता था जैसे कि वो गुस्सा जानती ही न थीं। उनकी मुस्कान अत्यंत रहस्यमयी होती थी। सब लोग उन्हें 'काकू' कहकर कहकर बुलाते थे। अतिथियों के घर आने पर वो बहुत प्रसन्न होती और स्वयं उनके लिए पकवान बनाती। जोतिराव सावित्रीबाई का बहुत सम्मान करते थे और सावित्रीबाई उन्हें 'सेठजी' कहकर बुलाती थीं। उनके बीच सच्चा प्रेम था। जोतिबा फुले कभी ऐसा कोई कार्य नही करते थे जिसमे सावित्रीबाई की सहमति न होती।

सावित्रीबाई एक दूरदर्शी और सुलझी हुई महिला थीं। उनके रिश्तेदारों और सामाजिक संपर्कों में उनकी बहुत इज्ज़त थी। एक गर्ल्स स्कूल की अध्यापिका होने के कारण नवशिक्षित महिलाओं में भी उनके लिए बहुत आदर था। अपने पास आने वाली सभी महिलाओं और लड़कियों को वो हमेशा सलाह और मार्गदर्शन प्रदान करतीं थी। पंडिता रमाबाई, आनंदीबाई जोशी और रमाबाई रानाडे सहित पुणे की कई सुविख्यात महिलायें उनसे मिलने आती थीं।

तात्या (जोतिबा फुले) की तरह सावित्रीबाई भी हमेशा सादे वस्त्र पहनती थीं। एक मंगलसूत्र, गले में काले मनकों की एक माला और एक बड़े से 'कुंकू' (सिंदूर का टीका) के अलावा वे अन्य कोई आभूषण नही पहनती थीं। सूर्योदय से पहले ही वो घर की साफ-सफाई और स्नान कर लेती थीं। उनका घर हमेशा स्वच्छ रहता था। घर में बर्तन हमेशा दमकते हुए और

सुव्यवस्थित रहते थे। भोजन वो स्वयं पकाती थीं और तात्या के स्वास्थ्य और आहार का बहुत ध्यान रखती थीं। ”

यह वर्णन उस व्यक्ति का है जो स्वयं उनके साथ रहा था। सावित्रीबाई के बारे में यह संभावित से ज्यादा प्रमाणिक तथ्य है। यह वर्णन एक क्रान्तिकारी महिला के घरेलू दैनिक जीवन के बारे में एक प्रामाणिक टिप्पणी है।[7]

जोतिबा फुले ने धर्म-पुस्तकों के बारे में विचार करते हुए किसी भी धर्म की किसी पुस्तक को सबके हित की नहीं कहा। धर्म की मान्यताएं समाज के सभी वर्गों के लिए एक समान नहीं रही। क्या किसी भी धर्म-पुस्तक में सभी जीव-प्राणियों को सुख देने के संदर्भ में सत्य नहीं है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि

“ इस धरातल पर मानव समाज ने जितनी धर्म-किताबें लिखी हैं, उनमें से किसी भी ग्रंथ में प्रारंभ से अंत तक समान सार्वजनिक सत्य नही है , क्योंकि हर धर्म-किताब में कुछ लोगों ने उस काल की स्थिति के अनुरूप मूर्खता की है। वे तमाम धर्म सभी मानव प्राणियों को समान रूप से हितकारी नहीं थे। स्वाभाविकता से उसमें कई समूह बन गए और वे एक-दूसरे की मन से घृणा और नफरत करने लगे।

दूसरी बात यह है कि यदि निर्माता हम सभी मनुष्यों का निर्माणकर्ता है, तो सभी मानव प्राणियों में हर व्यक्ति को सभी मानवी अधिकारों का उचित उपभोग करने का अवसर प्राप्त होना चाहिए लेकिन ऐसा होता नहीं दिखाई दे रहा है। मानव प्राणियों को कई तरह की मुसीबतों को, भारी कठिनाइयों को सहना पड़ता है। ”

(महात्मा जोतिबा फुले रचनावली भाग-2, पृ.-99)

अकाल पीडितों के लिए रसोई

सन् 1877 में महाराष्ट्र में भंयकर अकाल पड़ा। लोग अपने भूखों मर रहे थे। चारे के अभाव में पशुओं के गांव-देहात के लोग अपने पशुओं को भगा रहे थे। अपने घरों को छोड़कर शहर में आ रहे थे। सत्यशोधक समाज ने 'विक्टोरिया बाल आश्रम' की स्थापना की जिसमें हजारों लोग हर रोज खाना खाते थे।

17 मई, 1877 को जोतिबा फुले ने इस संबंध में नागरिकों से अपील करते हुए पत्र लिखा :

पूना, बंबई आदि शहरों के मेहरबान सदस्यों से नम्र निवेदन।

समाज के आदेश के अनुसार आप लोगों को नम्रतापूर्वक यह सूचित किया जा रहा है कि समाज के द्वारा व्हिक्टोरिया बालाश्रम की स्थापना की गई है। अकालग्रस्त लोग अपने बाल-बच्चों को घरों पर ही छोड़कर जाने लगे हैं और उसी के परिणामस्वरूप इंदापुर, मिरज और तास गांव की ओर के ब्राह्मणों को छोड़कर बाकी सभी जातियों के बेसहारा लोग अपने बाल-बच्चों को लेकर इकट्ठा हुए हैं। उन

अकाल पीड़ितों की राहत के लिए सावित्री बाई फुले द्वारा संचालित भोजनालय का दुर्लभ चित्र।

सभी को कभी-कभी दो- दो, तीन-तीन दिन तक अनाज का एक दाना भी नसीब नहीं होता है और भूख से तड़फड़ाते रहना पड़ता है, इसलिए अब उनकी केवल हड्डियां बची हुई हैं। इसके अलावा कपड़े-लत्तों के बिना वे इतने बेहाल हैं कि उनका यहां पूरी तरह से ब्योरेवार जिक्र करने में मुझे बड़ी पीड़ा होती है। इसलिए इस सूचना को देखते हुए आप सभी सदस्यों और अन्य सभी दयालु सज्जनों से निवेदन है कि अपनी सामर्थ्य के अनुसार कुछ न कुछ मदद भेजने की जल्दी की तो इसका मतलब यही होगा कि आप लोगों ने इस समय अपना फर्ज अदा करके बड़ी मेहरबानी की है।

(महात्मा जोतिबा फुले रचनावली-1, पृ.-269)

20 अप्रैल 1877 को जोतिबा को लिखे पत्र से पता चलता है कि सावित्रीबाई फुले इस काम में जुटी थी। साहूकार वर्ग अकाल में लोगों की सहायता करने की बजाए उनका शोषण कर रहा था।

20 अप्रैल 1877
ओटर, जुन्नर

सत्यमूर्ति, जोतिबा मेरे स्वामी,
सावित्री का सलाम!

साल 1876 चला गया, लेकिन अकाल नहीं — अपने अति विकराल रूप में यह अब भी मौजूद है। लोग मर रहे हैं। जानवर मर रहे हैं, ज़मीन पर गिरे पड़े हैं। भोजन की भारी कमी है। जानवरों के लिए चारा नहीं है। लोग अपने गाँव छोड़ कर जाने को मजबूर हो रहे हैं। कुछ लोग अपने बच्चों, अपनी कमसिन बेटियों को बेच रहे हैं और गाँव छोड़ रहे हैं। नदियाँ, सोते, तालाब पूरी तरह से सूख गए हैं - पीने का पानी तक नहीं है। पेड़ नष्ट हो रहे हैं - पेड़ों पर पत्ते नहीं बचे। बंजर ज़मीन में हर जगह दरारें पड़ रही हैं। सूरज तपा रहा है, जला रहा है। लोग भोजन और पानी के लिए कराह रहे हैं, ज़मीन पर मरने के लिए गिर रहे हैं। कुछ लोग ज़हरीले फल खा रहे हैं, और अपनी प्यास बुझाने के लिए अपना ही पेशाब पी रहे हैं। वे खाने और पानी के लिए रोते हैं और फिर मर जा रहे हैं। हमारे सत्यशोधक स्वयंसेवियों ने ज़रूरतमंद लोगों को

खाना और जीवनरक्षक वस्तुएँ उपलब्ध करवाने के लिए कमेटियाँ बनाई हैं। उन्होंने बचाव दलों का गठन भी किया है।

भाई कोंडाज और उनकी पत्नी उमाबाई मेरा अच्छा खयाल रख रहे हैं। ओटर के शास्त्री, गणपति सखारन, डुंबरे पाटिल और दूसरे लोग आपके पास आने की योजना बना रहे हैं। अच्छा होगा अगर आप सतारा से ओटर आ जाएँ और फिर अहमदनगर जाएँ।

आपको आर. बी. कृष्णजी पंत और लक्ष्मण शास्त्री याद होंगे। वे मेरे साथ प्रभावित इलाके में गए थे और उन्होंने पीड़ितों की रुपये-पैसे से भी मदद की है।

साहूकार दुष्टतापूर्वक इन हालात का फ़ायदा उठा रहे हैं। अकाल के कारण बहुत बुरी-बुरी बातें हो रही हैं। दंगे-फ़साद हो रहे हैं। कलेक्टर ने जब इसके बारे में सुना तो वह हालात को सामान्य करने आए। उन्होंने गोरे सिपाहियों को तैनात किया और हालात पर काबू पाने का प्रयास किया। पचास सत्यशोधकों को गिरफ़्तार किया गया। कलेक्टर ने मुझे बातचीत करने के लिए बुलाया। मैंने कलेक्टर से पूछा कि इन भले स्वयंसेवियों को झूठे आरोपों में फँसा कर बेवजह क्यों पकड़ा गया है। मैंने उनसे कहा कि उन्हें तुरंत छोड़ना चाहिए। क्लेक्टर निहायत ही शरीफ़ और निष्पक्ष थे। वह गोरे सिपाहियों पर चिल्लाए, "क्या पाटिल किसान डाके डालते हैं? उन्हें आज़ाद करो।" कलेक्टर लोगों की हालत से बहुत ही द्रवित हुए। उन्होंने तुरंत ही ज्वार से भरी चार बैलगाड़ियां रवाना कीं।

आपने गरीबों और ज़रूरतमंदों के लिए उदार और कल्याणकारी कार्यों की शुरुआत की है। इस ज़िम्मेवारी में मैं भी हाथ बँटाना चाहती हूँ। मैं आपको भरोसा दिलाती हूँ कि मैं हमेशा आपकी सहायता करूँगी। मैं कामना करती हूँ कि इस पवित्र कार्य के द्वारा अधिक से अधिक लोगों की सहायता की जाए।

मैं और कुछ नहीं लिखना चाहती।

आपकी,
सावित्री

प्रकृति प्रेमी सावित्रीबाई फुले

सावित्रीबाई फुले को प्रकृति से गहरा प्रेम था। मूलतः किसान परिवार से ताल्लुक होने के कारण मिट्टी के रंग व खुशबू उसके व्यक्तित्व का अभिन्न हिस्सा था। जोतिबा फुले का परिवार फूलों के कारोबार संबंधित था विभिन्न किस्म के फूलों के रंगों, खुशबू व कोमलता को उनकी विशिष्टता में पहचानती थी। उनकी 'पीला चम्पा', 'चमेली के फूल', 'जुही की कली', 'गुलाब का फूल', 'तितली और फूलों का कलियां', 'धरती का गीत', 'मानव और प्रकृति' कविताओं पर सरसरी नजर डालने से ही इसका अनुमान हो जाता है।

सावित्रीबाई का फूलों के साथ संबंध रंग-सुगंध के भोक्ता का नहीं है, बल्कि गहरी मानवीय संवेदनशीलता का है।

पीला चंपा
हल्दी रंगा
बाग में खिला
हृदय में भीतर तक बस गया ('पीला चम्पा')

जब जब मैं देखती हूं
चमेली के फूल को
तब तब वे फूल मुझे निहारते हैं।

पांच पंखुरियों के
सुहाने उमंग से भरे
चमेली के फूल
मुझसे करते हैं बातें
आकर मन के भीतर ('चमेली के फूल')

तितलियां देख देख मैं खो गई

बिसर गई अपने आप को। ('तितली और फूलों का कलियां')

सावित्रीबाई फूलों से संवाद करती हैं। प्रकृति से संवाद वही व्यक्तित्व कर सकता है जिसका संबध मानवीय के स्तर पर हो। सावित्री बाई का प्रकृति से आत्मीय संबंध है इसीलिए किसी सुंदर प्राकृतिक परिदृश्य के चित्रण से आगे बढी है।

सावित्रीबाई फुले मनुष्य को प्रकृति का अंग समझती है। परस्परता के अभाव में मानव-जीवन की कल्पना नहीं कर सकते। 'गुलाब का फूल' कविता में सावित्रीबाई ने गुलाब के फूल और कनेर के फूल में तुलना करते हुए दोनों की विशिष्टाओं को रेखांकित किया है। गुलाब के फूल की संज्ञा देकर मनुष्य को प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि माना है। लेकिन प्रकृति पर मनुष्य के प्रभुत्व को स्वीकार नहीं करती, बल्कि इसे सुंदर व समृद्ध बनाने की समर्थक हैं।

मानव प्राणी, निसर्ग- सृष्टि
एक ही सिक्के के दो पहलू
एक जानकर सारी जीव सृष्टि को
प्रकृति के अमूल्य निधि मानव की
चलो, कद्र करें। (मानव और सृष्टि)

फूलों के माध्यम से मानव व्यवहार और सामाजिक संबंधों के यथार्थ को भी उद्घाटित करती हैं। मनुष्यों के फूलों के प्रति व्यवहार से पीड़ा भी होती है।

नयन, नासिका को
रसिक जनों को
तृप्त कर, मुरझा जाता है
चम्पा का फूल। ('पीला चम्पा')

चमेली के फूलों ने
आपबीती सुनाई -

लोग जब बाग में टहलने आते
तब सुगंध के लालची
मुझे तोड़ घर ले जाते।

जग की रीत निराली है
बार-बार सूंघने के बाद
मुझे फेंक देते धूल में। ('चमेली के फूल')

उड़कर आ पहुंची तितलियां
फूलों के पास
इकट्ठा कर शहद पी लिया
मुरझा गई कलियां।
फूलों की कलियां चखकर
ढूंढा कहीं ओर ठिकाना।
रीत है यही दुनिया की
स्वार्थ और पल भर के हैं रिश्ते
देख दुनिया की रीत
हो जाती हूं मैं चकित। ('तितली और फूलों का कलियां')

सन् 1875 में स्वामी दयानन्द सरस्वती पूना पहुंचे, उन्होंने वहां कई व्याख्यान दिए। पूना के कट्टरपंथी पुराणपंथियों ने दयानंद की शोभा यात्रा न निकालने देने की धमकी दी। यद्यपि जोतिराव दयानन्द के विचारों से कतई सहमत नहीं थे, लेकिन सबको अपने विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता है इस विचार के लिए उन्होंने दयानन्द की शोभायात्रा की अगुवाई की। जोतिराव के होते हुए पोंगापंथियों की शोभायात्रा को रोकने की हिम्मत नहीं हो सकती थी। लेकिन उन्होंने स्वामी दयानन्द को लांछित करने के लिए दूसरा तरीका अपनाया। एक गधे को सजाकर उन्होंने बाजे-गाजों के साथ शोभायात्रा निकाली।

सत्यशोधक सावित्रीबाई फुले

24 सितम्बर, 1873 को पूना के जूनागंज के घर नंबर 527 में जोतिबा फुले की अध्यक्षता में 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना हुई। सत्यशोधक समाज के काम की तीन दिशाएं थी।

- भक्त और भगवान के मध्य किसी बिचौलिये की जरूरत नहीं। बिचौलियों द्वारा लादी गई धार्मिक गुलामी को नष्ट करना, अंधश्रद्ध अज्ञानी लोगों को उस गुलामी से मुक्त करना।
- साहूकारों और जमींदारों के शिकंजे से किसानों को मुक्त करना।
- सभी जातियों के स्त्री-पुरुषों को शिक्षा प्राप्त करा देना।[8]

[8] डा. मु.ब. शाह, भारतीय समाज क्रांति के जनक महात्मा जोतिबा फुले

इन्हीं तीन दिशाओं में बढ़ता हुआ सत्यशोधक समाज का काम महाराष्ट्र के गांव-गांव में पहुंचा था। उन्नीसवीं शताब्दी में समाज सुधार की कई संस्थाएं बनी जिनका समाज पर व्यापक प्रभाव भी पड़ा। जिनमें सत्यशोधक समाज के साथ ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज का नाम लिया जा सकता है। जहां अन्य संस्थाओं की पहुंच उच्च वर्गों तक थी, वहीं सत्यशोधक समाज का प्रभाव निम्न वर्गों में था।

सत्यशोधक समाज ही एकमात्र ऐसा समाज था जो वर्ण-मुक्त, जाति-मुक्त, लैंगिक शोषण-मुक्त, वैज्ञानिक चेतना संपन्न वर्गविहीन समाज की स्थापना के लिए कार्यरत था। जोतिबा फुले के नेतृत्व में सत्यशोधक समाज से जुड़े लोगों ने सामाजिक, धार्मिक, लैंगिक, और आर्थिक शोषण के खिलाफ अनेक पहलकदमियां की।

जोतिबा फुले की मृत्यु के बाद सन् 1893 में सत्यशोधक समाज के सासवड़ में हुए अधिवेशन में सावित्रीबाई फुले को सत्यशोधक समाज का अध्यक्ष चुना गया। अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि

"अरे, आप लोग आचमनी-कटोरा की धुन में पंचांग काहे को पढ़ते हैं ? महार-मांगो को अछूत क्यों समझते हैं ? शूद्र-अतिशूद्रों को अशिक्षित क्यों रखते हैं ? आपकी इस मूर्खता के कारण ही आपके जाति बंधु ईसाई बन रहे हैं। मूर्खो, स्वयं को तो हिंदू समझते हो और अस्पृश्य को हिंदू होने के बावजूद दूर क्यों रखते हो ? महार-मांगों की छाया तक को कलुषित मानना धर्म का अपमान करना है।"[9]

सावित्रीबाई फुले जब तक जिंदा रही तब तक सत्यशोधक समाज का नेतृत्व किया। सन् 1897 में प्लेग पीड़ितों के लिए ऐतिहासिक कार्य किया। इसी कार्य के दौरान ही सावित्रीबाई फुले शहीद हुई थी।

---

[9] एम. जी. माली, क्रांतिज्योति सावित्रीबाई फुले, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, पृ.- 34

पति को मुखाग्नि

सन् 1887 में सावित्रीबाई फुले के पति जोतिबा फुले को अंधरंग हो गया था। अपने जीवन के अंतिम तीन साल उन्होंने बिस्तर पर गुजारे। सावित्रीबाई फुले व सत्यशोधक समाज के कार्यकर्ताओं ने उनका इलाज करवाने में कोई कसर बाकी नहीं रखी। इस दौरान सावित्रीबाई फुले ने उनकी खूब सेवा की। 28 नवम्बर सन् 1890 को सावित्रीबाई फुले के पति जोतिबा फुले का देहांत हो गया।

अपनी वसीयत में जोतिबा फुले ने यह इच्छा व्यक्त की थी कि मृत्यु के बाद चिता पर जलाया न जाए उन्हें नमक से ढंक कर दफनाया जाय। लेकिन नगरपालिका के अधिकारियों ने आवासीय भूमि पर शव को दफ़नाने की अनुमति नहीं दी इसलिए शव-दाह किया गया।

जोतिबा फुले व उनके बेटे यशवंत राव

सावित्रीबाई फुले और जोतिबा फुले की अपनी संतान नहीं थी। इन्होंने अपने बाल हत्या प्रतिबंधक गृह में पैदा हुए बच्चे को गोद लिया था और इसका नाम यशवंत रखा था। जोतिबा फुले ने अपनी

वसीयत में उत्तराधिकार के समस्त अधिकार यशवंत को दिए थे।

एक परंपरा यह थी कि जो व्यक्ति अंतिम यात्रा में 'तित्वा' (मिट्टी का छोटा घड़ा) उठाकर चलता, वही मृतक का उत्तराधिकारी माना जाता था और मृतक की संपति प्राप्त करता था। संपति के लालच में जोतिबा फुले के भतीजे (भाई के लड़के) ने यशवंत को दत्तक पुत्र बताकर 'तित्वा' उठाने पर विवाद किया और रक्त संबंधी होने के कारण इसे निभाने का दावा किया। इस विवाद

में सावित्रीबाई फुले स्वयं 'तित्वा' उठाकर चली और अपने पति जोतिबा फुले का अंतिम संस्कार किया। शायद यह भारत की पहली महिला थी जिसने अपने पति को मुखाग्नि दी। जिस समाज में स्त्रियों का श्मशान भूमि में जाना तक वर्जित हो उसमें यह साहसिक कदम ही कहा जाएगा।

शहीद सावित्रीबाई फुले

सावित्रीबाई फुले का जीवन समाज सेवा व सामाजिक क्रांति का पर्याय है। विभिन्न उपक्रमों के माध्यम से जीवन पर्यन्त समाज को दिशा देती रही और 10 मार्च को 1897 को शहीद हुई।

उनको शहीद की संज्ञा देना कुछ लोगों को एकबारगी शायद अजीब लगे। लेकिन उनको शहीद कहना अतिश्योक्ति नहीं है। क्योंकि उनको अच्छी तरह से मालूम था कि मानव भलाई का जो कार्य वे कर रही हैं इसमें उनकी जान भी जा सकती है। यही है शहादत का जज्बा।

हुआ कुछ यूं था कि 1896 में तो महाराष्ट्र में भयंकर सूखा पड़ा था और 1897 में पूना में प्लेग फैल गया था। लोग मर रहे थे धड़ाधड़। चारों तरफ त्राहि त्राहि मची थी। सत्यशोधक समाज के कार्यकर्ता प्लेग पीड़ितों के इलाज

के लिए जुटे थे। सावित्रीबाई फुले ने अपने बेटे यशवंत को भी (जो डाक्टर था और सेना में नौकरी कर रहा था) छुट्टी लेकर पूना बुला लिया था । प्लेग पीड़ितों की सहायता के लिए यशवंत ने हस्पताल खोल लिया था।

संक्रामक बिमारी होने के कारण लोग डरे हुए थे। अपने बेटा-बेटी, मां-बाप, भाई-बहन तक को छूने से डरते थे। कहीं प्लेग की चपेट में ना आ जाएं। सावित्रीबाई को पता चला कि महार बस्ती में पांडुरंग बाबाजी गायकवाड़ का लड़का प्लेग की चपेट में है। कोई उसे छू भी नहीं रहा। उसे अपनी पीठ पर बिठा कर हस्पताल लाई। प्लेग ने सावित्रीबाई को अपनी चपेट में ले लिया। चार महीने बाद 10 मार्च 1897 को उन्होंने अंतिम सांस ली।

सावित्रीबाई फुले को यह बात अच्छी तरह से ज्ञात थी कि प्लेग जानलेवा बीमारी है और संक्रमण से फैलती है। मानव-सेवा की मूर्ति सावित्रीबाई फुले ने अपनी जान की परवाह न करते हुए मानव-सेवा के कार्य को अंजाम दिया। मानवता की सेवा के लिए शहीद सावित्रीबाई फुले को सलाम।

"अज्ञानता, जातिगत और भाषाई भेदभाव इस देश में अभिशाप की तरह हैं।सवाल उठता है कि जब सब कोई दुखी है तो किसकी मदद की जाए। लेकिन इस सवाल से परेशान होकर हाथ पर हाथ रखकर बैठने की बजाय उनकी मदद की जाए जो सबसे ज्यादा पीड़ित हैं। महार और मांग जातियों को जातिगत भेदभाव की वजह से यहाँ सर्वाधिक कष्ट झेलने पड़ते हैं। और उन्हें इस कष्ट से छुटकारा सिर्फ ज्ञान (शिक्षा) प्राप्ति से ही मिल सकता है। इसलिए सबसे पहले मैंने उन्ही के लिए कार्य शुरू किया।"

सं. हरि नरके, महात्मा फुले : साहित्य और विचार

इतिहासवेत्ता सावित्रीबाई फुले

जब तक हिरन अपना इतिहास
खुद नहीं लिखेंगे,
तब तक हिरनों के इतिहास में
शिकारियों की शौर्य गाथायें गायी जाती रहेंगी।

- अश्वेत कवि चिनुआ अचीबे

मनुष्य के विकास और निर्माण में इतिहास चेतना का बहुत बड़ा योगदान है। इतिहास अतीत और वर्तमान के मध्य कभी न खत्म होने वाला संवाद है। अपने इतिहास को जानने-संवारने की मनुष्य की प्रवृति का ही परिणाम है कि वह उतरोत्तर प्रगति करता गया है। इस ब्रह्मांड में केवल मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो अपने इतिहास को इस तरह संजो कर रखता है। और अपनी अगली पीढ़ियों को हस्तांतिरत करता है।

भारत में शासन-सत्ताएं अपने हितों के अनुकूल ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने का बढ़ावा देती रही हैं। शासन सत्ताओं और वर्चस्वी वर्गों ने अपने सरोकारों और वर्गीय प्राथमिकताओं के अनुसार इतिहास लेखन करने को प्रोत्साहित किया है। जो समुदाय व वर्ग हाशिए पर रहे उनको इतिहास में सम्मानजनक व उचित स्थान नहीं दिया गया।

हाशिये के वर्गों के मनोबल को तोड़ने इनके बारे में मनगढंत बातें लिखी गई। शोषक वर्गों द्वारा लिखित इतिहास में शोषित वर्गों के प्रति घृणा स्पष्ट दिखाई देती है। शोषकों के कामों को हमेशा महिमामंडित किया गया । शोषितों की उपलब्धियों को इतिहास में दर्ज नहीं किया गया या फिर बहुत ही कम आंका गया। जब तक शोषित वर्ग अपना इतिहास स्वयं नहीं लिखते तब तक उनके बारे में सही तथ्य कभी सामने नहीं आयेंगे।

एक भाषण में सावित्रीबाई कहती हैंः

'दो हजार वर्षों से ऊंची जाति के लोगों ने शूद्र-अतिशूद्रों को ज्ञान, सम्पति तथा सत्ता से वंचित रखा है। इसके कारण

विदेशियों ने हमारे देश पर आक्रमण करके, इन ऊंची जातियों को पराभूत किया। हम केवल देखते ही रहे, ऐसा नहीं, हमने विदेशियों का साथ दिया, यही सही इतिहास है। किंतु इसके लिए क्या ऊंची जाति के लोग ही जिम्मेदार नहीं हैं? मुट्ठी भर ब्राह्मण, मुट्ठी भर क्षत्रिय और मुट्ठी भर वैश्य इन विदेशियों के साथ बड़े ही अहंकार से लड़ते थे। वे हमें पूछते भी नहीं थे। ज्ञान, सम्पति तथा सत्ता से वे उन्मत हो गए थे। वे हमारे ही शत्रु बने थे। विदेशियों ने उन्हें चारों खाने चित्त कर दिया। बार-बार होने वाली इस हार के लिए वे ही कारणीभूत हैं। हम शूद्र-अतिशूद्र लोग इस पराजय के लिए जिम्मेदार नहीं हैं, यह कहने का साहस मुझे शिक्षा से प्राप्त हुआ है। अज्ञान, मजबूरी, लाचारी और पाखंडवाद के चक्र में फंसे हुए शूद्र-अतिशूद्रों में शिक्षा से ही चेतना निर्माण होगी। इसलिए शिक्षा ग्रहण करने की टालमटोल अब नहीं होनी चाहिए अन्यथा यह दुर्दशा हमारी पीढ़ी को भी सहन करनी होगी।'[10]

सावित्रीबाई फुले ने शोषित-वंचित-पीड़ित वर्ग की दृष्टि से इतिहास को समझने का प्रयास किया। ब्राह्मणवादी शोषकों की चीलाकियों की तरफ संकेत किया। दलित-वंचित वर्ग के नायकों को स्थापित करने की कोशिश दी। इतिहास चेतना में पौराणिक कथाओं और मिथकों का भी योगदान रहता है। सावित्रीबाई फुले ने 'राजा बलि की गौरव गाथा' कविता के माध्यम से दलितों-वंचितों के गौरवशाली इतिहास को उभारने की कोशिश की है।

सावित्रीबाई फुले ने 'बावनकशी सुबोध रत्नाकर' कविता-संग्रह में इतिहास को परिभाषित करने की कोशिश की है कि बाहर से आकर आर्यों ने भारत के स्थानीय लोगों पर आक्रमण करके पराजित किया। इनका शोषण करने के लिए चातुर्वर्ण धर्म की स्थापना करके शूद्रों (स्थानीय लोग) को ज्ञान,

---

[10] संपादक हरि नरके, महात्मा फुले : साहित्य और विचार ; महात्मा फुले चरित्र साधने प्रकाशन समिति, महाराष्ट्र शासन; प्र. सं. 1993: पृ.- 246

सत्ता व संपति के अधिकारों से वंचित किया। स्थानीय लोगों पर अनेक अत्याचार किए। इनके शोषण और तिरस्कार को धार्मिक कार्य माना गया।

मुस्लिमों ने भारत पर आक्रमण किया। उन्होंने यहां के उच्च वर्गों के साथ मिलकर शासन किया और शूद्रों का शोषण किया। इसके बाद अंग्रेजों ने आकर अपना शासन स्थापित किया। अंग्रेजों के शासन में शूद्रों को शिक्षा और प्रशासन में नौकरी प्राप्त करने का अधिकार मिला।

सावित्रीबाई फुले का संबंध महाराष्ट्र से था इसलिए महाराष्ट्र में शिवाजी के शासन को शूद्रों का हमदर्द बताया है, लेकिन पेशवा शासन को स्थापना से शूद्रों पर अनेक जुल्म-अत्याचार करने वाला चित्रण किया है। इसीकारण से पेशवा शासन को हटाने के लिए दलित-वंचित जनता ने अंग्रेजों का सहयोग किया।

दलितों-वंचितों के नायकों पर कविताएं लिखी। इन नायकों में 'छत्रपति शिवाजी' और 'महारानी छत्रपति ताराबाई' का विशेष जिक्र किया है। महारानी छत्रपति तारा बाई की वीरता व युद्धकौशल का वर्णन किया तो छत्रपति शिवाजी को दलित जनता का हमदर्द मानते हुए प्रातःस्मरणीय कहा है।

फुले दंपति ने इतिहास को राजाओं की वंशावलियों के रूप में नहीं, बल्कि उसके वर्गीय चरित्र के रूप में देखा। भारतीय समाज के आंतरिक संघर्षों और वर्गीय हितों की टकराहट को पहचानने की दृष्टि इसमें मौजूद है। यही दृष्टि बाद में दलित इतिहास दृष्टि का आधार बनी।

'शूद्र' शब्द का सही अर्थ है — नेटिव। आक्रांताओं ने उन्हें शूद्र की संज्ञा दी। असल में शूद्र ही भारत के स्वामी हैं। बाहरी आक्रमणकारियों ने उन पर हमला करके जीत लिया और अपना गुलाम बना लिया। अपने अन्याय और शोषण को वैधता प्रदान करने के लिए शूद्र जन्म को पूर्वजन्म के पापों का फल कहा। इस तरह ब्राह्मणवाद की भेदभावपूर्ण विचारधारा और उसकी कुटिलताओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया। इतिहास के प्रति इस दृष्टि से परंपरा का मूल्यांकन ने वैज्ञानिक इतिहास दृष्टि का रास्ता प्रशस्त हुआ।

साहित्यकार सावित्रीबाई फुले

सावित्रीबाई फुले एक साहित्यकार थी। उनका साहित्य कविताओं, पत्रों व भाषणों में है। उनके साहित्य में तत्कालीन जीवन का यथार्थ उनके विचार, संकल्प विद्यमान है। सावित्रीबाई फुले ने जीवन भर शताब्दियों से पसरी अज्ञानता और रूढ़िवादिता के खिलाफ संघर्ष किया। यही उनके साहित्य के विषय हैं। सावित्रीबाई फुले का साहित्य सामाजिक परिवर्तन और नवजागरण के मूल्यों की स्थापना का साहित्य है।

एम. जी. माली ने लिखा है कि "वास्तव में सावित्राबाई की ज्ञानज्योति महात्मा फुले की आलोकमयी ज्योति से प्रज्जवलित हुई थी। महात्मा फुले के सामाजिक कार्य महासागर से अधिक विशाल हैं। अपने कार्य की पूर्ति हेतु फुले दंपति ने समाज परिवर्तन के लिए आवश्यक नए साहित्य का सृजन किया। उनका साहित्य जनजागरण का साहित्य था। ... फुले दंपति द्वारा लिखित साहित्य में दीन-हीनों की वेदना एवं आक्रोश का वर्णन किया गया है। इसीलिए फुले दंपति का साहित्य पढ़ते समय पाठकों के लिए वह कालखंड और उसमें चित्रित सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक परिस्थिति का खयाल रखना जितना आवश्यक है उतना ही

सावित्रीबाई फुले का साहित्य

कविता

- **काव्यफुले**
- **बावनकशी सुबोधरत्नाकर**

भाषण

- **मातोश्री सावित्रीबाई फुले के भाषण**
- **जोतिबा के भाषण**

पत्र

- **जोतिबा फुले को लिखे तीन पत्र**

समीक्षकों के लिए उनके साहित्य की अभिव्यक्ति के बाह्य रंगों को न देखते हुए उसके अंतरंगों को देखना आवश्यक है।

फुले दंपति के साहित्य में दीन-दलितों के प्रति गहरी सहानुभूति है। इतना ही नहीं अपितु उनका कुल साहित्य ही मानवी समता, न्याय एवं स्वतंत्रता के मूलभूत तत्वों पर आधारित लोक साहित्य है, जो भारतीय ही नहीं बल्कि पूरी मानवता की समता एवं स्वतंत्रता का इस देश में प्रथम ऐलान था।"[11]

कविता

सावित्रीबाई फुले के दो कविता संग्रह हैं। पहला कविता संग्रह 'काव्य फुले' के नाम से सन् 1854 में प्रकाशित हुआ और दूसरा संग्रह 'बाबनकशी सुबोध रत्नाकर' सन् 1892 में।

सावित्रीबाई फुले के कविता संग्रह

काव्यफुले संग्रह में 41 कविताएं हैं। जिनमें सामाजिक, ऐतिहासिक विषयों के साथ-साथ प्रकृति संबंधी व शिक्षा की ओर प्रेरित करती उपदेशात्मक कविताएं हैं।

'बाबनकशी सुबोध रत्नाकर' में 52 पद हैं। यह सग्रंह जोतिबा की मृत्यु के बाद 1892 में प्रकाशित हुआ था। इसमें शूद्रों-अतिशूद्रों के इतिहास पर संकेत करते हुए काव्य में जोतिबा के जीवन की

[11] एम. जी. माली; क्रांतिज्योति सावित्रीबाई फुले; प्रकाशन विभाग, भारत सरकार; पृ.44

विविध घटनाओं को कविता में अभिव्यक्त किया गया है। यह जोतिबा फुले की प्रामाणिक जीवनी कही जा सकती है।

डॉ. मा.गो. माळी ने 'सावित्रीबाई फुले समग्र वाङ्मय' (मराठी) की अपनी भूमिका में 'काव्यफुले' की कविताओं को विषयवार सात वर्गों में रखा है-

1) निसर्ग विषयक- कुल सात कविताएँ,
2) समाज विषयक- ग्यारह कविताएँ
3) प्रार्थनापरक- छः कविताएँ
4) आत्मपरक- पाँच कविताएँ
5) काव्य विषयक- दो कविताएँ
6) बोधपरक - आठ कविताएँ
7) इतिहास विषयक- दो कविताएँ

भाषण

शास्त्री नरो बाबाजी महाद्हत पंसारे पाटिल ने 'मातोश्री के भाषण' शीर्षक से सावित्रीबाई फुले के भाषणों का संपादन किया है। सन् 1892 में ये प्रकाशित हुए। इनमें उद्यम, शिक्षा, सदाचरण, व्यसन और कर्ज आदि विषयों पर सावित्रीबाई फुले द्वारा दिए गए भाषण संकलित हैं।

सावित्रीबाई फुले ने जोतिबा फुले के भाषणों का संपादन भी किया था। इसमें जोतिबा के 4 भाषण शामिल किए हैं। 25 दिसम्बर 1856 को यह पुस्तक प्रकाशित हुई थी।

पत्र

सावित्रीबाई फुले ने अपने पति जोतिबा फुले को तीन पत्र लिखे। इन पत्रों में तत्कालीन सामाजिक जीवन की सच्चाइयों के साथ-साथ सावित्री-जोतिबा के व्यक्तिगत जीवन के बारे में भी कई तथ्यों व घटनाओं का पता चलता है। ये पत्र तत्कालीन सामाजिक यथार्थ के दस्तावेज हैं।

महात्मा जोतिबा फुले का जीवन वृत

11 अप्रैल 1827 जनम

1840 सावित्री बाई से विवाह
1841-1847 मिशनरी स्कूल से शिक्षा
1847 टामस पेन रचित मनुष्य के अधिकार पुस्तक का अध्ययन
1848 उच्च जाति के मित्र की शादी में अपमान
1848 शुद्र–अतिशुद्र बालिकाओं के लिए स्कूल की स्थापना
1849 शुद्रों को शिक्षित करने के कारण पत्नी समेत घर से निष्कासित
1852 शिक्षा में योगदान के लिए मेजर कैंडी द्वारा सम्मानित
1854 स्कोटिश स्कूल में अध्यापक
1855 रात्रि विद्यालय की शुरुआत
1860 विधवा पुनर्विवाह सहायता
1863 शिशु–हत्या निवारण के लिए प्रसुति–गृह की स्थापना
1868 अछूतों के लिए घर के कुएं से पानी खोलना
1873 सत्य शोधक समाज की स्थापना
1875 स्वामी दयानंद सरस्वती की शोभा–यात्रा
1876–82 पूना नगरपालिका के सदस्य
1882 हंटर शिक्षा आयोग के समक्ष बयान
1885 ग्रामीणों के अधिकारों के पक्ष में जुन्नार कोर्ट का फैसला
1888 जनता से सम्मानित और महात्मा की उपाधि

28 नवम्बर 1890 मृत्यु

महात्मा जोतिबा फुले की पुस्तकें

1855 तृतीय रत्न (नाटक)
1869 शिक्षा विभाग के ब्राह्मण अध्यापक का पंवाडा
1869 ब्राह्मणों की चालाकी
1869 छत्रपति शिवाजी राजे भोंसले का पंवाड़ा
1873 गुलामगिरी
1877 पूना सत्यशोधक समाज की रिपोर्ट
1882 हंटर शिक्षा आयोग के समक्ष बयान
1883 किसान का कोड़ा
1885 इशारा
1886 ग्राम जोशी के संबंध में
1887 सत्यशोधक समाज के लिए मंगलगाथा और पूजाविधि अखण्डादि काव्य रचना
1891 सार्वजनिक सत्य धर्म पुस्तक

सावित्रीबाई फुले

- 3 जनवरी, 1831 को जन्म। नायगांव (खंडाला, जिला सतारा) में पिता खंडोजी नेवसे व माता लक्ष्मी।
- 1840 जोतिराव फुले के साथ विवाह।
- 1841 शिक्षा शुरू।
- 1846-1847 नॉर्मल स्कूल से थर्ड और फोर्थ ईयर की परीक्षा पास की।
- 1 जनवरी, 1848 लड़कियों के लिए देश का पहला स्कूल पुणे के भिडेवाड़ा में। सावित्रीबाई को स्कूल की पहली मुख्य शिक्षिका।
- 1849 पुणे में वयस्कों के लिए स्कूल उस्मानशेख के घर।
- 16 नवम्बर, 1852 फुले परिवार को शिक्षा के क्षेत्र में काम के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा सम्मानित। सावित्रीबाई सर्वश्रेष्ठ शिक्षक घोषित।
- 1854 'काव्य फुले' कविता संग्रह प्रकाशित।
- 1855 किसानों और मजदूरों के लिए एक रात्रि पाठशाला शुरू की।
- 25 दिसम्बर 1856 'जोतिबा के भाषण' संपादन और प्रकाशन।
- 1863 बाल हत्या प्रतिबंधक गृह आरंभ।
- 1868 अछूतों के लिए घर का कुआं खोला।
- 1874 ब्राह्मण विधवा काशीबाई के पुत्र को गोद लिया।
- 1876 -1877 अकाल में महाराष्ट्र में 52 मुफ्त भोजन छात्रावास खोले।
- 4 फरवरी 1889 दत्तक पुत्र डॉ. यशवंत का विवाह ।
- 28 नवंबर 1890 उनके पति जोतीराव फुले की मृत्यु।
- 1991 में 'बावनकशी सुबोध रत्नाकर' काव्य प्रकाशित।
- 1893 सासवाड़ में सत्यशोधक समाज की अध्यक्ष।
- 1897 पुणे में प्लेग की महामारी के दौरान राहत कार्य।
- 10 मार्च, 1897 प्लेग के मरीजों की सेवा करते हुए मृत्यु।